अध्यात्म योग का मासिक पत्र

प्रेक्षाध्यान

वर्ष 36
अंक 03
मार्च 2015
मूल्य ₹ 25

♦ भाव-परिवर्तन का अभियान ♦ ज्ञाता-द्रष्टा चेतना का विकास ♦ साधना की निष्पत्ति :वीतरागता

दायित्व हर किसी को मत सौंपो।
योग्य व्यक्ति का योग्य कार्य के लिए
नियोजन किया जाना चाहिए।
कुपात्र, सुपात्र व अपात्र का
सम्यक् विश्लेषण करो।

– आचार्य महाश्रमण

श्रद्धाप्रणत

निर्मल – प्रशान्त भंसाली

गंगाशहर – दिल्ली

Tulsi Adhyatma Needam
Jain Vishva Bharati
Publication

Prekshadhyan
A Spiritual Yoga Monthly

वर्ष 36
अंक 03
मार्च 2015

प्रेक्षाध्यान

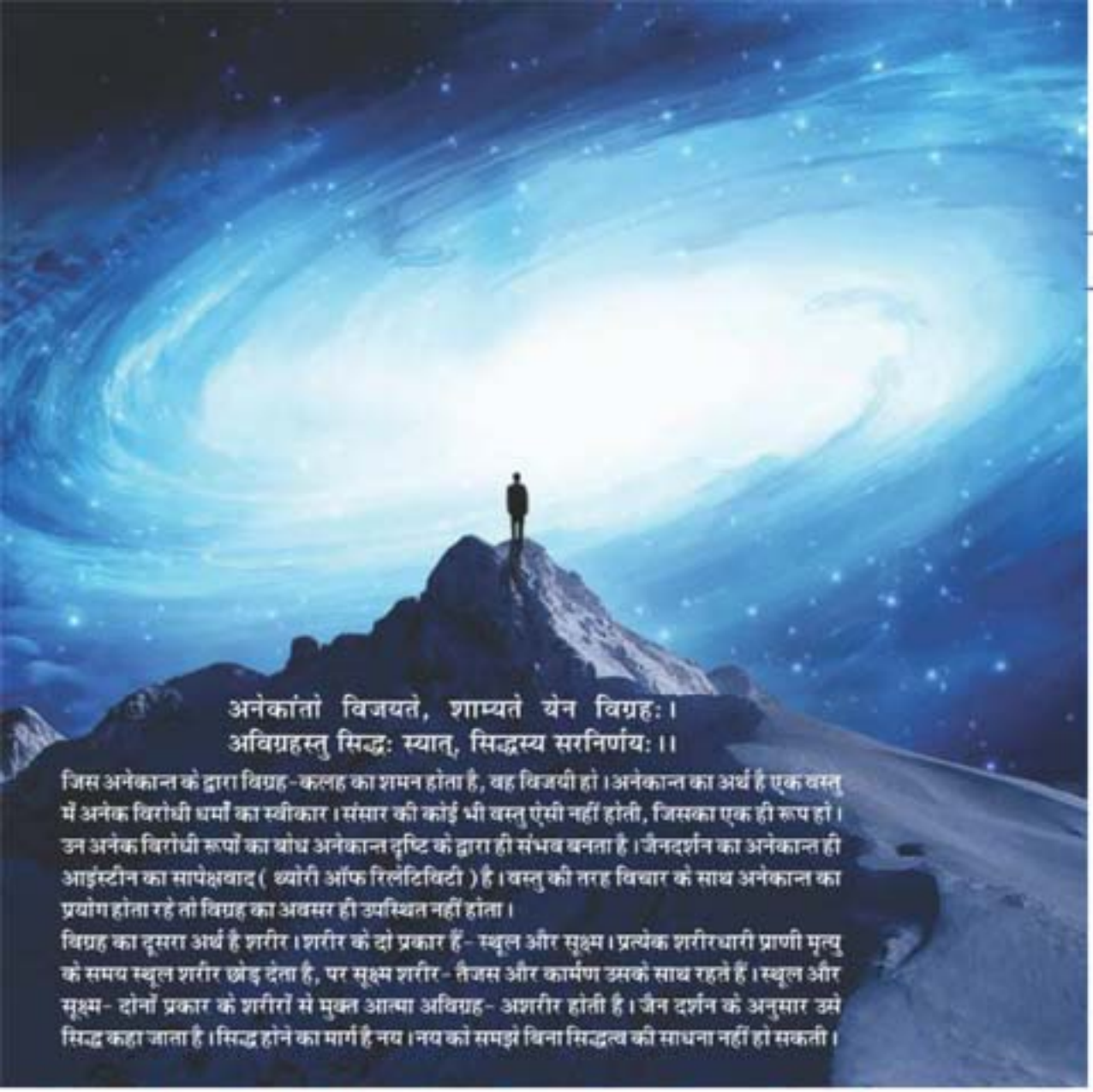

अनेकांतो विजयते, शाम्यते येन विग्रहः।
अविग्रहस्तु सिद्धः स्यात्, सिद्धस्य सरनिर्णयः।।

जिस अनेकान्त के द्वारा विग्रह-कलह का शमन होता है, वह विजयी हो। अनेकान्त का अर्थ है एक वस्तु में अनेक विरोधी धर्मों का स्वीकार। संसार की कोई भी वस्तु ऐसी नहीं होती, जिसका एक ही रूप हो। उन अनेक विरोधी रूपों का बोध अनेकान्त दृष्टि के द्वारा ही संभव बनता है। जैनदर्शन का अनेकान्त ही आइंस्टीन का सापेक्षवाद (थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी) है। वस्तु की तरह विचार के साथ अनेकान्त का प्रयोग होता रहे तो विग्रह का अवसर ही उपस्थित नहीं होता।

विग्रह का दूसरा अर्थ है शरीर। शरीर के दो प्रकार हैं- स्थूल और सूक्ष्म। प्रत्येक शरीरधारी प्राणी मृत्यु के समय स्थूल शरीर छोड़ देता है, पर सूक्ष्म शरीर- तैजस और कार्मण उसके साथ रहते हैं। स्थूल और सूक्ष्म- दोनों प्रकार के शरीरों से मुक्त आत्मा अविग्रह- अशरीर होती है। जैन दर्शन के अनुसार उसे सिद्ध कहा जाता है। सिद्ध होने का मार्ग है नय। नय को समझे बिना सिद्धत्व की साधना नहीं हो सकती।

सम्पादक
अशोक संचेती
+91 98106 23004
aksancheti@outlook.com

कार्यालय
प्रेक्षा फाउण्डेशन
तुलसी अध्यात्म नीडम्,
जैन विश्व भारती
लाडनूं-341 306
राजस्थान
भारत

दूरभाष :
+91 1581 226119
+91 82333 44482

शुल्क

प्रति अंक	:	25 रु.
त्रैवार्षिक	:	750 रु.
दस वर्ष	:	2500 रु.
एक वर्ष (विदेश)	:	2500 रु.

ऑनलाइन ट्रांसफर -
ओरियण्टल बैंक ऑफ कॉमर्स, लाडनूं को (IFSC-ORBC0101027) को जैन विश्व भारती - A/C प्रेक्षा फाउण्डेशन के खाता संख्या 10272011000760 में जमा करें।

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रेक्षाध्यान मासिक में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों से सम्पादक/प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है और न ही उनका कोई वैधानिक उत्तरदायित्व है।

विशेष : सदस्यता नवीनीकरण एवं अन्य जानकारियों हेतु कार्यालय से ही सम्पर्क करें।

रचना, समाचार, चित्र, सूचना आदि के प्रेषकों हेतु

'प्रेक्षाध्यान' में प्रकाशनार्थ सामग्री के प्रेषण हेतु ध्यातव्य बिन्दु -

- प्रेक्षाध्यान, जीवनविज्ञान, स्वास्थ्य, जीवन-मूल्य एवं अभिप्रेरणा विषयक सामग्री का उपयोग किया जा सकेगा।
- स्वच्छ, पठनीय एवं हाशिया छोड़कर कम्पोज की गई प्रकाशन सामग्री ही उपयोग में ली जा सकेगी।
- *e-mail* से भेजी जाने वाली सामग्री की *Open File* भेजी जानी अपेक्षित है।
- सामग्री प्रेषण हेतु *Mail ID - foundation@preksha.com*
- 'प्रेक्षाध्यान' मासिक अस्वीकृत सामग्री को लौटाने हेतु बाध्य नहीं है।

ज्ञाता-द्रष्टा चेतना का विकास

प्रेक्षा-प्रगति — आचार्य महाप्रज्ञ

चैतन्य विकास से आदतें बदलती है, आचरण बदलता है। इस तरह की चेतना जागती है तब जागरूकता बढ़ती है। प्रमाद कम होता है। सतत जागरूकता और सतत अप्रमत्तता बनी रहती है। आदतों के न बदलने में एक बड़ी बाधा है- प्रमाद। प्रमाद बहुत विघ्न पैदा करता है। कहा गया है, कल्याणकारी कार्य बहुत विघ्न वाले होते हैं। ऐसा कोई भी अच्छा काम नहीं होता जो ....

6

साधना की निष्पत्ति : वीतरागता

प्रेक्षा-प्रवाह — आचार्य महाश्रमण

हर प्राणी संसार में जीता है। इस संसार की न आदि है और न अंत। इसकी परंपरा आगे से आगे परंपरित हो रही है। प्रश्न हो सकता है कि संसार की परंपरा को, जन्म-मरण की परंपरा को चलाने वाला कौन है? आदमी केवल ऊपर देखता है। मूल को देखे बिना समस्या का स्थायी समाधान नहीं हो ....

10

22 — प्रेक्षा-अनुप्रेक्षा

भाव-परिवर्तन का अभियान

आचार्य तुलसी

प्रेक्षाध्यान का एक प्रयोग है- चैतन्य केन्द्रों का ध्यान। यह शरीर-प्रेक्षा का ही विकसित रूप है। आनुक्रमिक शरीर-प्रेक्षा में एक-एक अवयव पर थोड़े समय के लिए ध्यान केन्द्रित होता है, उसमें यह संभव नहीं है। प्रत्येक अवयव पर दीर्घकालिक

33 — Preksha Inspiration

Let us know The Body

Acharya Mahapragya

Before you engage yourself in *Sadhana*, you must know the physiology and anatomy of the human brain. It has three parts: the cerebrum, the mid-brain and ....

जीवन-व्यवहार — मुनि धर्मेशकुमार

सकारात्मक दृष्टिकोण और आत्मविश्वास

सर्वांगीण व्यक्तित्व विकास के लिए आत्मविश्वास की सुदृढ़ता नितान्त आवश्यक है। आत्मविश्वास का स्रोत हमारी स्वयं की दृष्टि है। कहा भी जाता है, जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि। हम प्रायः अपने दृष्टिकोण से ही स्वयं एवं दूसरों के व्यवहार, आचार और विचार का निर्णय करते हैं। सामान्यतया जीवन में व्यक्ति उसको ही ....

14

अध्यात्म-योग — मुनि रश्मिकुमार

आत्म-उत्थान की प्रक्रिया

हमारे सामने दो तत्त्व है– शरीर और आत्मा (जड़ और चेतन)। आत्मा के उत्थान की चर्चा करें उससे पहले यह समझना आवश्यक है कि आत्मा क्या है और उसका शरीर से सम्बन्ध क्या है? बहनें रसोई बनाती हैं, अगर उन्हें यह पता न हो कि कौनसा खाद्य पदार्थ या पकवान कैसे बनाया जाता है तो वे ....

18

अभिप्रेरणा — अशोक संचेती

आलोचना का सामना कैसे करें ?

बैंजामिन फ्रैंकलिन का कथन है- जिस तरह मृत्यु मानव जीवन का शाश्वत सत्य है उसी तरह आलोचना भी शाश्वत सत्य है। कोई भी मनुष्य आलोचना से बच नहीं सकता। व्यक्ति के जीवन की सफलताएँ, संबंधों की स्थिरता, प्रसन्नता इस बात पर निर्भर करती है कि वह अपनी आलोचना के प्रति ....

20

वैकल्पिक चिकित्सा — डॉ. चंचलमल चौरड़िया

स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियां क्यों विश्वसनीय ?

दुनिया में कोई भी दो व्यक्ति सम्पूर्ण रूप से एक जैसे नहीं हो सकते। उनके जीवन का लक्ष्य, प्राथमिकताएं, खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार, आवास एवं व्यवसाय का वातावरण तथा परिस्थितियां एक जैसी नहीं होती, तो बाह्य रूप से कुछ लक्षणों में समानता होने के बावजूद किसी एक रोग के ....

26

प्रेक्षा-प्रेरणा — साध्वी जगवत्सला

सफलता में बाधक : नशा और गुस्सा

विकास में बहुत बड़ा रोड़ा है गुस्सा और नशा। नशा व गुस्सा मात्र वर्तमान की ही समस्या नहीं बल्कि अतीत काल से चली आ रही है। फर्क इतना है कि उस समय नशा केवल पुरुष ही किया करते थे, आज स्त्रियां भी करती हैं। उस समय नशे का रूप भिन्न था और आज भिन्न.....................

28

स्तम्भ

विचार प्रेक्षा	5
काव्य-प्रेक्षा	12
प्रेक्षा-रहस्य	13
प्रेक्षा-चिकित्सा	17
प्रेक्षा-बोध	17
प्रेक्षा-सारांश	24
प्रेक्षा-पाथेय	24
कथा-प्रेक्षा	25
प्रेक्षा-अनुभव	30
प्रेक्षा कैलेण्डर	31
प्रेक्षा-प्रेरणा	33
Preksha Thoughts	33
प्रेक्षा-संवाद	38

प्रेक्षा विविधा

प्रेक्षा वाहिनी	31
प्रेक्षा कार्ड	32

प्रकृति दोहन के खतरे

विज्ञान की सफलता ने जहाँ मानव सभ्यता को विकास के शिखर तक पहुंचा दिया है, वहीं शक्ति के मद में चूर आधुनिक मनुष्य अपनी मर्यादा भूलकर प्रकृति का अधिक से अधिक दोहन करने के लिए बेतहाशा कदम उठाता रहा है। जंगलों की कटाई करके अधिकाधिक लाभ बटोरने की प्रवृत्ति ने प्रकृति के संतुलन को बिगाड़ दिया है। पर्यावरण खतरे में है। हरे भरे क्षेत्र उजड़ते जा रहे हैं और पृथ्वी के कई क्षेत्रों में प्राकृतिक तबाही के दृश्य उभरकर सामने आ रहे हैं। प्रदूषण इतना बढ़ गया है कि ओजोन छतरी का छेद बढ़ता जा रहा है। वैज्ञानिक चेतावनी दे रहे हैं कि अगर इसी रफ्तार के साथ प्रदूषण जारी रहा तो सूरज की पराबैंगनी किरणों से मानव की रक्षा करने वाली ओजोन छतरी नष्ट हो जाएगी और तब पृथ्वी पर जीवन संभव नहीं रह जाएगा।

अपनी मर्यादाएं भूलकर मानव समुदाय भौतिक सुखों के समक्ष पृथ्वी के अस्तित्व के प्रश्न को नकार रहा है। धरती के ऊपर की प्राकृतिक सुषमा को नष्ट करने के साथ-साथ धरती के नीचे छिपी प्राकृतिक संपदा का अंधाधुंध दोहन किया जा रहा है। वैज्ञानिक भीषण भूकंप और ज्वालामुखी फटने की चेतावनी दे रहे हैं। परंतु वर्तमानजीवी आधुनिक मनुष्य को भविष्य के खतरे का तनिक भी अनुमान नहीं है। अगर ऐसे समय में मनुष्य मर्यादा को अपने जीवन में उतारता तो प्रकृति के साथ खिलवाड़ नहीं होता। यह सत्य है कि प्रकृति ने सबकुछ मानव समुदाय के उपयोग के लिए दिया है। हवा, जल, पेड़-पौधे एवं अन्य प्राकृतिक वस्तुएं मानव जाति के हित के लिए है। परंतु उपयोग की भी एक मर्यादा होती है। आज बड़े महानगरों में शुद्ध हवा उपलब्ध नहीं है। वाहनों एवं औद्योगिक इकाइयों की भरमार होने के कारण चारों तरफ जहरीला धुआं फैला हुआ है और अधिकतर नागरिक विभिन्न रोगों से ग्रस्त हो रहे हैं। अगर प्रदूषण को नियंत्रित नहीं किया गया तो आने वाले वर्षों में दिल्ली, मुंबई जैसे महानगर नरक से भी अधिक बदतर स्थिति में पहुंच जाएंगे।

पर्यावरण की ज्वलंत समस्या पर अर्जेन्टिना के एक निर्देशक ने एक फिल्म बनाई है, जिसमें दिखाया गया है कि गर्भ में पल रहा एक शिशु अपनी मां से संवाद स्थापित करता है। वह कहता है कि ऐसी धरती पर जन्म लेने से क्या लाभ होगा, जिस धरती को स्वार्थान्ध मनुष्यों ने रहने योग्य नहीं छोड़ा है? सिर्फ स्वार्थ सिद्धि करने एवं किसी भी वस्तु से सर्वाधिक लाभ उठाने की लालसा ने मनुष्य को मर्यादाहीन बना दिया है। इसीका परिणाम है कि वर्तमान समय का विश्व मनुष्य के रहने के लिए अनुपयुक्त होता जा रहा है।

❁ अशोक संचेती

ज्ञाता-द्रष्टा चेतना का विकास

आचार्य महाप्रज्ञ

चैतन्य विकास से आदतें बदलती हैं, आकर्षण बदलता है। इस तरह की चेतना जागती है तब जागरूकता बढ़ती है। प्रमाद कम होता है। सतत जागरूकता और सतत अप्रमत्तता बनी रहती है। आदतों के न बदलने में एक बड़ी बाधा है- प्रमाद। प्रमाद बहुत विघ्न पैदा करता है। कहा गया है, कल्याणकारी कार्य बहुत विघ्न वाले होते हैं। ऐसा कोई भी अच्छा काम नहीं होता जो सर्वथा निर्विघ्न हो। केवल कल्याणकारी ही नहीं, बल्कि प्रत्येक कार्य में विघ्न और बाधा है।

दुनिया में हर आदमी अनुभव करता है कि बाधाएं आती हैं, विघ्न आते हैं और इस अनुभूति के साथ बहुत सारे स्तोत्र रचे गए, मंत्र निर्मित किये गए, जिनके द्वारा बाधाओं का निराकरण किया जा सके, विघ्नों को टाला जा सके। ये बाधाएं क्यों आती हैं? ये विघ्न क्यों आते हैं? कारण भी खोजना चाहिए। विघ्नों के दो स्रोत हैं- एक भीतरी, दूसरा बाहरी। कुछ विघ्न अपने आन्तरिक कारणों से पैदा होते हैं और कुछ विघ्न बाहरी कारणों से आते हैं। मनुष्य प्रभावित होता है। प्रभावित होना एक विघ्न है। परिस्थिति से प्रभावित होता है। आसपास के वातावरण से प्रभावित होता है। दूसरे की वाणी से और दूसरे के चिन्तन से प्रभावित होता है। प्रभावित होना एक बड़ी बाधा है।

रूस के एक वैज्ञानिक हस्नाली ने अनुसंधान किया। उन्होंने बताया कि भूभौतिक वनस्पतियों से मनुष्य बहुत प्रभावित होता है। उस प्रभाव से कोई बच नहीं सकता। कभी वायु में तेज दबाव होने के कारण परिवर्तन हो जाता है। कभी सौर-मंडल के कारण परिवर्तन होता है। ये जो कारण हैं परिवर्तन के, इन कारणों से आदमी प्रभावित होता है। इस आधार पर उन्होंने बताया कि महीने के सारे दिन समान नहीं होते। कुछ दिन अच्छे होते हैं और कुछ दिन खराब होते हैं। कुछ दिन शुभ होते और कुछ दिन अशुभ होते हैं। गुरुत्वाकर्षण की विसंगतियों से भी मनुष्य प्रभावित होता है। यह प्राचीन सिद्धान्त था ज्योतिष का कि सारे दिन समान नहीं होते। दिनों में परिवर्तन आता रहता है। कुछ दिन बहुत अच्छे होते हैं और कुछ दिन खराब माने जाते हैं। दिन नहीं, एक दिन का पूरा काल-चक्र भी समान नहीं होता। परिवर्तन आता रहता है। इसीलिए शायद यह दुघड़ियों वाली बात चली। कौन-सा दुघड़िया अच्छा है और कौन-सा खराब है। मुहूर्त वाली बात चली। एक समय ऐसा होता है कि दुर्घटनाएं बहुत ज्यादा होती हैं। आदमी सौर-मंडल से प्रभावित होता है। उस समय मानसिकता और चिंतन बदल जाता है, प्रवृत्तियां बदल जाती हैं। प्रभावित होने के अनेक कारण हैं। आन्तरिक कारण हैं अपने भीतर के रसायन, कर्मों के विपाक। ये भी बदलते रहते हैं।

एक ईश्वरवादी ने परिकल्पना की कि ईश्वर किसी को दंड देता है तो उसका गला पकड़कर दंड नहीं देता, उसे जेल में नहीं डालता। प्रश्न हुआ कि वह दंड कैसे देता है? उसने कल्पना की कि जब ईश्वर को दंड देना होता है, तब वह उसकी बुद्धि को भ्रष्ट कर देता है। और ज्योंही उसकी बुद्धि भ्रष्ट हुई वह अपने आप दंड पा लेता है। किसी कर्मवादी ने कल्पना की कि कर्म का जब विपाक होता है तो अपने आप वह दंड पा लेता है। एक कहावत चल पड़ी कि 'बुद्धि कर्मानुसारिणी' आदमी का जैसा कर्म होता है वैसी ही बुद्धि हो जाती है। बुद्धि का नाश होता है तो आदमी नष्ट हो जाता है। इन सारे चिन्तनों का निष्कर्ष यह है कि आदमी प्रभावित होता है अपने आन्तरिक कारणों से भी और बाहरी कारणों से भी। यह प्रभावित दशा विघ्न पैदा करती है।

सामने कोई क्रोध कर रहा है। क्रोध को देखा और देखने वाला व्यक्ति प्रभावित हो जाएगा। उसमें प्रमाद की चेतना जागृत हो जाएगी।

एक आदमी पीड़ा से रो रहा है। दूसरे व्यक्ति के कोई पीड़ा नहीं है। पर वह उसे देखकर रोने लग जाएगा।

एक भाई मेरे पास आकर बोला, मेरी एक समस्या है, मैं बहुत संवेदनशील हूं। मेरे सामने कोई रोता है तो मुझे भी रुलाई आ जाती है। लोग कहते हैं कि वह रो रहा है, उसके तो कारण है, पर तू क्यों रो रहा है? मैं कहता हूं कि पता नहीं, वह रो रहा था अतः मैं भी रोने लग गया। कोई हंसता

कोलाहल और शोर का प्रभाव सब पर पड़ेगा। कैसे बचा जाए? बड़ा कठिन है। कहां से शुरू करें अप्रभावित होना? हमें आन्तरिक प्रभाव से बचना है। हमारे भीतर में जो हमें प्रभावित करने वाले तत्त्व हैं, उनसे अप्रभावित होने का अभ्यास करना है। अपने कर्म-विपाक से अप्रभावित रहने का अभ्यास, अपने आन्तरिक रसायनों से अप्रभावित रहने का अभ्यास करना है। जब हम भीतरी प्रभावों से बचने का अभ्यास करेंगे तो शायद बाहरी प्रभाव भी हम पर कम पड़ेंगे।

है तो हंसने लग जाएगा। इस प्रभावित परिस्थिति और घटना के साथ-साथ आदमी जैसे बदलता है वैसे चेतना बदल जाती है।

इस अवस्था में ज्ञाता और द्रष्टा की चेतना तो नीचे दब जाती है और कर्ता की चेतना ऊपर आ जाती है। आदमी में 'मैं करने वाला हूं' यह कर्तृत्व का अहंकार जाग जाता है। यह कर्तृत्व की चेतना कभी हर्ष पैदा करती है और कभी शोक पैदा करती है। कभी भय पैदा करती है, कभी प्रियता पैदा करती है और कभी अप्रियता पैदा करती है। आदमी इतने सांग बदलता है कि बहुरूपिये तो कम सांग बदलते हैं, पर आदमी एक दिन में सौ सांग बदल लेता है। कभी तो इतना खुश की पूछो मत और आधा घंटा बाद इतना नाराज कि भृकुटि तनी हुई है कि देखने वाला पास ही नहीं आ सकता। कभी क्रोध, कभी शांत और कभी वीतराग की मुद्रा, कभी राक्षसी मुद्रा। इतने सांग बदलता है और इतने जल्दी-जल्दी बदलता है कि उसकी अनेकरूपता की कोई कल्पना नहीं की जा सकती। यह सारा परिवर्तन इसलिए होता है कि मनुष्य में प्रमाद की चेतना है। प्रमाद पीछे-पीछे चल रहा है। जैसे ही अप्रमाद की चेतना जागती है यानि अप्रभावित होने का अभ्यास करता है तब बहुरूपियापन छूट जाता है। घटना को जानना और देखना व अनुभव करना, पर उससे प्रभावित न होना, यह बिल्कुल नया प्रयोग है। घटना तो पीछा करती है, पीछा नहीं छोड़ती।

एक आदमी बगीचे में जा रहा था। इतने में पीछे से एक सिपाही आकर बोला, तुम्हें पता है कि इस बगीचे में गधा लाना वर्जित है। वह बोला, मुझे आरोपित कर रहे हो? मैं तो कोई गधा नहीं लाया। सिपाही बोला- तुम्हारे पीछे-पीछे गधा आ रहा है। उसने कहा कि मेरा गधा नहीं है। सिपाही ने कहा, तो फिर वह तुम्हारे पीछे क्यों आ रहा है? उसने कहा, मेरे पीछे तो तुम भी आ रहे हो और गधा भी आ रहा है।

आदमी के पीछे गधा भी चलता है और सिपाही भी चलता है। पर जब अपनाता नहीं है तो न गधे से मतलब और न आदमी से मतलब। हमारे पीछे प्रमाद बहुत काम करता है। किन्तु हम उसे अपनाएं नहीं, अपना न बनाएं तो प्रमाद हमारे लिए कोई कठिनाई नहीं बनता। किन्तु आदमी घटना से प्रभावित होता है और घटना को अपना लेता है। वहां समस्याएं और विघ्न पैदा होते हैं, बाधाएं पैदा होती हैं। अभ्यास शुरू तो हो जाता है, किन्तु परिपक्व नहीं होता। विघ्न बहुत आते रहते हैं, प्रमाद आता रहता है। एक सूक्ष्म विश्लेषण अध्यात्म का है कि एक मुनि बन गया। मुनि बना, व्रत की चेतना विकसित हो गई, फिर भी एक दिन में अनेक बार वह अव्रत की चेतना में चला जाता है। एक जीवन में हजारों बार अव्रत की चेतना में चला जाता है। व्रत की चेतना में जीने वाला अव्रत की चेतना में चला जाता है। बहुत सीधी भाषा में आप समझें कि एक साधु अनेक बार असाधुत्व में चला जाता है। इसका कारण है कि प्रमाद विघ्न डालता है। प्रमाद जब-जब तीव्र बनता है तो व्रत की चेतना को अव्रत में बदल डालता है। साधना में बहुत विघ्न हैं। जब तक अध्यात्म परिपक्व नहीं होता तब तक विघ्नों का निवारण नहीं हो सकता। विघ्न सताते रहते हैं। इन्हें बदलने के लिए तीव्र अभ्यास की जरूरत है।

यह ध्यान का अभ्यास उस अप्रमाद की चेतना या जागरूकता को विकसित करने का अभ्यास है। हमारा अप्रमाद बढ़े, जागरूकता बढ़े। हम जागरूक बन जाएं। आदमी जितना अपने प्रति जागरूक, उतना घटनाओं से अप्रभावित। आदमी जितना अपने प्रति मूर्च्छित या सुषुप्त उतना ही घटनाओं से प्रभावित। घटनाओं से प्रभावित होने का कारण है अपने प्रति सुषुप्ति। घटनाओं से अप्रभावित होने का कारण है अपने प्रति जागरूक रहना। ध्यान का मतलब है अपने प्रति जागरूक होना। जो घटनाओं के प्रति जागरूक होता है, वह ध्यान नहीं कर सकता। अभी कोई हल्ला आया, तत्काल ध्यान उधर चला गया। अभी कोई बोला, तत्काल ध्यान उधर चला गया। अभी कोई गंध आई, ध्यान उधर चला गया। मक्खी आकर बैठी, ध्यान उधर चला गया।

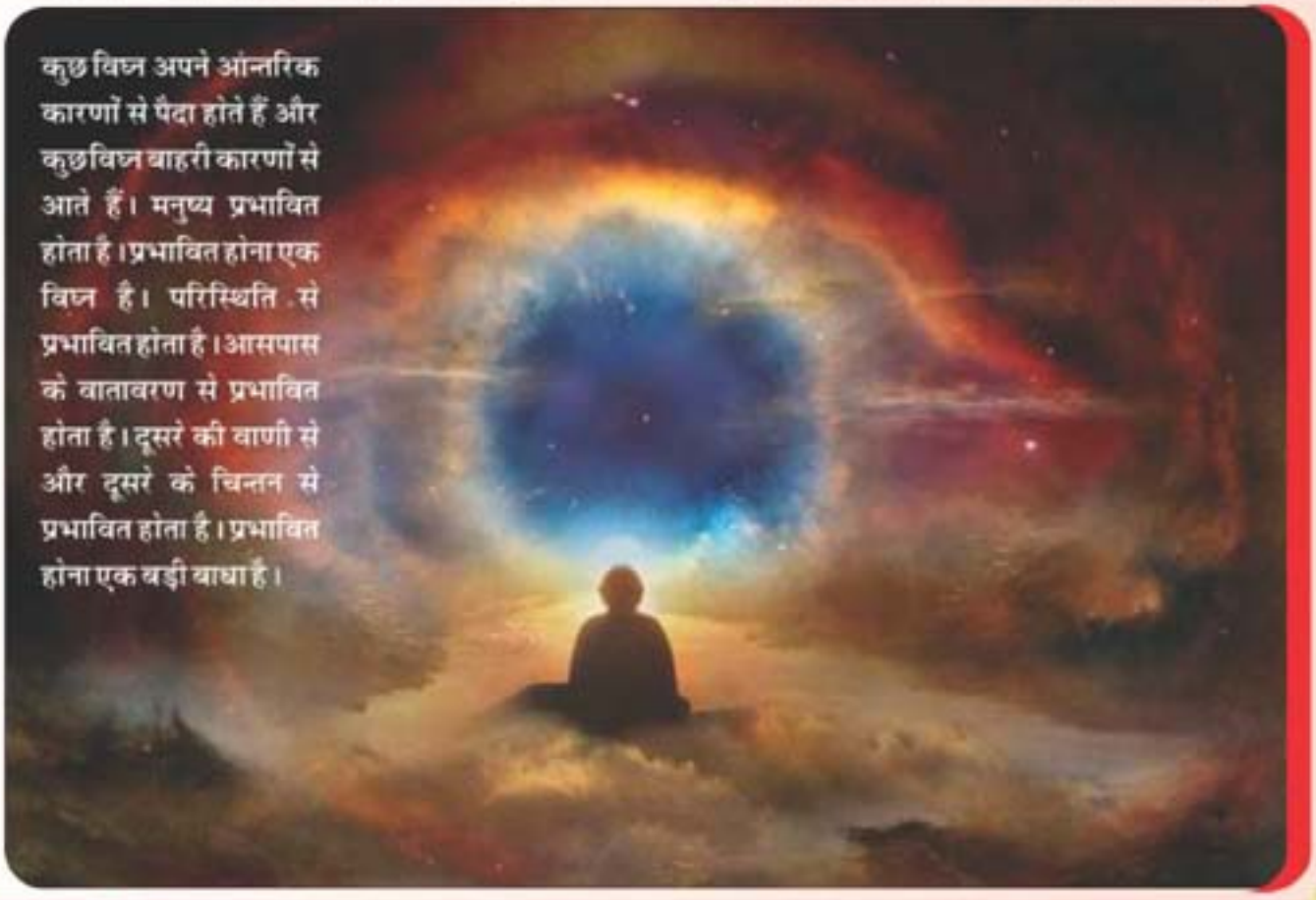

जितना ध्यान बाहर की घटनाओं की ओर जाएगा, ध्यान भंग होता चला जाएगा। और जितना अपने प्रति जागरूक होगा उसका ध्यान भंग नहीं होगा। बाहर जो हो रहा है, हो रहा है, कोई मतलब नहीं है। और यह हमारी व्यावहारिक सफलता का भी बहुत बड़ा सूत्र है। आदमी इतनी घटनाओं के बीच जीता है, हजारों-हजारों घटनाएं घटती रहती हैं। किन्तु अप्रभावित वही रह सकता है जिसने अपने प्रति जागरूक होने का पाठ पढ़ा है। व्यावहारिक क्षेत्र का भी यह बड़ा सूत्र है।

सिकन्दर महान् योद्धा था। विश्व विजेता था। एक बार वह विजय प्राप्त कर आया। वह बहुत प्रसन्न था और सारा नगर उसके विजयोत्सव को मनाने में तल्लीन था। कुछेक मंत्री इस अवसर का लाभ उठाना चाहते थे। वे सिकन्दर के सामने जाकर बोले- 'यदि आप क्षमादान का आश्वासन दें तो हम एक महत्त्वपूर्ण बात की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहेंगे। सिकन्दर प्रसन्न मूड में था। उसने कहा- 'जो कहना हो, वह स्पष्ट कहो। मैं क्षमादान देता हूं।' एक मंत्री ने कहा- 'सम्राट! अब यूनान का पतन सन्निकट है। सिकन्दर ने पूछा- 'क्यों? वह बोला, सम्राट! आजकल आपकी मां हमारे कार्यों में बहुत हस्तक्षेप करती हैं। कोई भी काम ठीक व्यवस्था से चलने नहीं देतीं। हम सब हैरान हो गए हैं। हम मानते हैं कि इतनी विजय होने के बाद भी समस्याएं पैदा होंगी और हमारा विशाल साम्राज्य नष्ट हो जाएगा। सम्राट ने सुना। मन क्रोध से भर गया, पर क्षमादान दे चुका था, इसलिए मौन रहा। वह मां का भक्त था। मां के प्रति बड़ी श्रद्धा थी। वह मानता था कि विजय का सारा श्रेय मां के आशीर्वाद को है। वह मां के प्रति ऐसी बात सुनने के लिए तैयार नहीं था। पर क्षमादान का पलड़ा भारी था। इधर क्षमादान और उधर क्रोध का द्वन्द्व चलता रहा। फिर सम्राट ने कहा- 'तुम कुछ भी कहो, सोचो, मेरी विजय का मूल कारण है मेरी मां! यदि मां का सही परामर्श नहीं मिलता तो मैं कभी सफल नहीं हो पाता। मैं तुम्हारी बातों से सहमत नहीं हूं।'

यदि सिकन्दर अपने प्रति जागरूक नहीं होता तो इतना प्रभावित हो जाता मंत्रियों की बात से कि अपनी मां के प्रति अन्याय कर देता। ऐसे अन्याय बहुत होते हैं। किसी की सुनी सुनाई बात पर न जाने कितने बड़े-बड़े अनर्थ हो जाते हैं और इसलिए होते हैं कि आदमी अपने प्रति जागरूक नहीं होता। व्यावहारिक स्तर पर भी जो अपने प्रति जागरूक नहीं होता, दूसरे से प्रभावित होता है तो बड़ी कठिनाइयां पैदा करता है। आन्तरिक स्तर पर जो अपनी आत्मा के प्रति जागरूक नहीं होता तो निश्चित ही समस्या पैदा करता है। हमें अप्रभावित रहने का अभ्यास करना है। बाहरी स्थिति से हम कैसे अप्रभावित बनें? कोई तूफान आएगा उसका प्रभाव सब पर पड़ेगा। सौर-मंडल के विकिरण का प्रभाव सब पर पड़ेगा। इतना धुंआ, इसका प्रभाव सब पर पड़ेगा। कोलाहल और शोर का प्रभाव सब पर पड़ेगा। कैसे बचा जाए? बड़ा कठिन है। कहां से शुरू करें अप्रभावित होना? हमें आन्तरिक प्रभाव से बचना है। हमारे भीतर में जो हमें प्रभावित करने वाले तत्त्व हैं, उनसे अप्रभावित होने का अभ्यास करना है। अपने कर्म-विपाक से अप्रभावित रहने का अभ्यास, अपने आन्तरिक रसायनों से अप्रभावित रहने का अभ्यास करना है। जब हम भीतरी प्रभावों से बचने का अभ्यास करेंगे तो शायद बाहरी प्रभाव भी हम पर कम पड़ेंगे। उनका असर कम होगा। कोलाहल का प्रभाव बहुत ज्यादा होता है। ध्वनि का प्रदूषण भी बहुत खतरनाक होता है। वह कान के परदे पर ही प्रभाव नहीं डालता, किन्तु दिमाग पर भी प्रभाव डालता है। जिस व्यक्ति में एकाग्रता का अभ्यास हो गया है, वह उससे भी बच जाता है। चंचलता में जितना कोलाहल बाधा डालता है एकाग्रता में कठिनाई पैदा नहीं करेगा। और विकास तो यहां तक हो सकता है कि एकाग्रता घनीभूत हो जाए तो बाहर का कोलाहल उसके लिए नगण्य बन जाएगा। चेतना की यह स्थिति भी पैदा की जा सकती है। हम आंतरिक परिवर्तन की बात करें कि भीतर में कैसे अप्रभावित रहें? हम उस चेतना का विकास करें कि भीतर में होने वाले परिवर्तन हमें प्रभावित न कर सकें।

उस अप्रभावित अवस्था में एक चेतना विकसित होती है। उस चेतना का नाम है- ज्ञाता-द्रष्टा चेतना। जो जानती है और देखती है पर प्रभावित नहीं होती। जानना और देखना पर घटना से प्रभावित नहीं होना। एक संकड़ी पगडंडी है केवल जानना और देखना, किन्तु उससे प्रभावित न होना बहुत संकड़ी पगडंडी है। यह बड़ा कठिन कार्य है, पर अभ्यास के द्वारा यह स्थिति बनती है, बन सकती है। इस चेतना का विकास होने पर पहली बात तो यह होती है कि जिस चेतना में ज्ञाता-चेतना और द्रष्टा-चेतना विकसित हो गई वह अकरणीय कार्य नहीं कर सकता। कोई भी अकरणीय कार्य नहीं करेगा। वही काम करेगा जो करणीय है। अकर्तव्य उसके द्वारा कभी संभव नहीं हो सकता।

दूसरी बात है कि कर्तव्य करेगा पर उसका अहंकार कभी नहीं करेगा। यह बड़ी मुश्किल बात है। आदमी बहुत सारे काम करते हैं। उनके साथ अहंकार जुड़ जाते हैं।

एक सेठ ने सोचा कि मैं मेरी मां की ऐसी पूजा करूं जो सबको याद रहे। मेरा नाम सारी दुनिया में फैल जाए। यह सोचकर उसने एक सोने की चौकी बनाई। बहुत बड़ी चौकी। एक दिन पूजा का समय रखा। पंडितजी को बुला लिया। सारा कार्यक्रम चला और जब कार्य संपन्न होने को आया तो सेठ उठा और बोला कि 'आज मैंने अपनी मां की अर्चना की है। अब अर्चना संपन्न हो रही है और मैं एक घोषणा करने जा रहा हूं कि जिस चौकी पर मेरी मां बैठी है, वह चौकी मैं पंडितजी को देता हूं।' यहां तक तो ठीक है कि चौकी पंडितजी को दे दी, पर आगे बोला (आदमी का अहं बोला है) 'पंडितजी! इतना बड़ा दानी कोई मिला आपको दुनिया में आज तक!' सारी बात बदल गई। सारे लोग देखते रह गए सेठ की ओर। पंडित भी बड़ा स्वाभिमानी था, त्यागी था। अगर लोभी होता तो सह लेता। वह खड़ा हुआ। अपनी जेब से एक रुपया अधिक रखकर बोला- 'सेठ साहब! इस चौकी पर एक रुपया अधिक रखकर आपको लौटा रहा हूं। मैं आपसे पूछना चाहता हूं, क्या इससे बड़ा त्यागी आपको कोई मिला?'

आदमी को करणीय का अहंकार भी बड़ा सताता है। जब ज्ञाता-द्रष्टा की चेतना जाग जाती है तो दोनों स्थितियां निष्पन्न होती हैं। वह अकरणीय काम तो करता ही नहीं और करणीय का अहंकार भी नहीं करता। यह दो प्रकार की चेतना निष्पत्ति में आती है।

तीन बातें हो गईं- अप्रभावित होना, अकरणीय न करना और करणीय का अहंकार न करना। इसका अर्थ है, ज्ञाता और द्रष्टा की चेतना। जब तक शरीर है तब तक यह नहीं हो सकता कि आदमी कोरा ज्ञाता-द्रष्टा रहे। एक सशरीर अवस्था और एक अशरीर अवस्था, शरीर मुक्त अवस्था। शरीर मुक्त अवस्था में कोई भी आत्मा केवल ज्ञाता और केवल द्रष्टा रह सकती है। कुछ भी करना नहीं होता। किन्तु जब तक शरीरधारी आत्मा है, शरीर का कवच है, आवरण है तब तक केवल ज्ञाता और केवल द्रष्टा की स्थिति नहीं बनती। तब तक हमारा रूप रहेगा ज्ञाता, द्रष्टा और कर्त्ता का। तीन बातें रहेंगी। शरीर के छूटने के साथ-साथ कर्त्ता छूट जाएगा और ज्ञाता और द्रष्टा रह जाएगा। तो फिर हम कैसे कह सकते हैं कि ध्यान के समय केवल जानो और केवल देखो। ज्ञाता और द्रष्टा रहो। यह एक सापेक्ष बात है। कर्तव्य उसके पीछे छिपा हुआ है। कर्त्ता को उससे अलग नहीं किया जा सकता। कुछ लोग जो ऐसा सोचते हैं कि हम कर्त्ता नहीं हैं, उनकी बात वास्तव में सही नहीं है।जब तक शरीर है और जब तक मन और वाणी है तब तक हमारा कर्त्तव्य

मिट नहीं सकता। हमारी क्रिया के तीन साधन हैं- शरीर, वाणी और मन। ये तीन हैं तो हम कर्त्ता बने रहेंगे। किन्तु कर्त्तव्य का परिमार्जन, परिष्कार और शोधन हो जाता है तो फिर ज्ञाता-द्रष्टा की चेतना ऊपर आ जाती है और कर्त्ता की चेतना नीचे रह जाती है। जब तक इनका परिमार्जन नहीं होता, ज्ञाता और द्रष्टा की चेतना नीचे आ जाती है और कर्त्ता की चेतना ऊपर आ जाती है। सोने की चौकी का दान तो नीचे चला जाता है और 'इतना बड़ा दान किया मैंने', यह बात ऊपर आ जाती है। बस, इतना अन्तर होता है नीचे की मंजिल का और ऊपर की मंजिल का। व्रत की चेतना के बाद चैतन्य के दूसरे सोपान का विकास हो जाता है, तीसरे का विकास करना शेष रहता है। उसकी साधना के लिए लम्बा समय चाहिए। यह ज्ञाता और द्रष्टा की चेतना का विकास कोई एक दिन में नहीं हो जाता और एक बार में नहीं हो जाता। क्योंकि प्रमाद इतना सघन और मूर्च्छा इतनी ज्यादा सघन होती है कि बार-बार सताती है। आलस्य बार-बार सताता है। अकर्मण्यता सताती है। ये सब प्रमाद के ही प्रकार हैं। आलस्य प्रमाद का एक प्रकार है। काम करना जरूरी है पर आलस्य बीच में आ जाता है। कुछ लोग बहुत ज्यादा आलसी होते हैं। वे कुछ काम करना नहीं चाहते। आत्म-साधना और ध्यान की बात तो बहुत दूर है, घर का काम करना भी नहीं चाहते। ऐसी वृत्ति बहुत लोगों में होती है। वे आराम करना और बैठे रहना चाहते हैं।

एक नई बहु आई घर में। वह आलसी थी। कोई भी काम करना नहीं चाहती थी। सासु भली थी। उसने सोचा, नई-नई आई है, धीरे-धीरे ठीक हो जाएगी। सासु जल्दी उठती और मकान में झाड़ू देती। दो-तीन बार बेटे ने देखा। उसे यह अच्छा नहीं लगा। वह मां का भक्त था। उसने सोचा, एक उपाय करना चाहिए, जिससे कि मां का झाड़ू छूट जाए और पत्नी काम करने लगे। दूसरे दिन जब मां झाड़ू लगा रही थी, तब वह गया और मां से कहा- 'मां! झाड़ू मुझे दो। तुमको यह शोभा नहीं देता।' मां बोली- 'बेटा! तुम झाड़ू लगाओगे? यह तो हम स्त्रियों का काम है। तुम जाओ, मैं झाड़ू लगा दूंगी।' दोनों में आग्रह होने लगा। बहुरानी दोनों के आग्रह को देखकर हंस रही थी, पर झाड़ू मैं लगा दूंगी- ऐसा कहना वह नहीं चाहती थी आलस्य के कारण। वह मां के पास आई और बोली- 'आपस में क्यों आग्रह कर रहे हैं। एक उपाय बताती हूं, एक दिन झाड़ू आप लगा लें और एक दिन झाड़ू वे लगा लेंगे। आग्रह खत्म हो जाएगा।'

जो आलस्य में जीते हैं उनकी चेतना ज्ञाता-द्रष्टा की नहीं होती। कुछ कहते हैं, हम काम नहीं करते, केवल देखते रहते हैं। यह ज्ञाता-द्रष्टा की चेतना नहीं है। यह है अकर्मण्यता की चेतना। यह जीवन का बड़ा विघ्न है। यह कर्त्तव्य का दोष है। हम कर्त्ता की स्थिति को अस्वीकार न करें। यह मानकर चलें कि जब तक शरीर है तब तक कर्त्ता की चेतना भी साथ में रहेगी। उसे छोड़ा नहीं जा सकता। वह कर्त्ता की चेतना ज्ञाता और द्रष्टा की चेतना से प्रभावित रहेगी तो उसमें दोष कम आएंगे। यदि वह कर्त्ता की चेतना ज्ञाता और द्रष्टा की चेतना से प्रभावित नहीं होगी तो उसमें बहुत दोष आ जाएंगे। कर्त्तापन सिरदर्द बन जाएगा। अनेक व्यक्ति इस अहंकार का भार ढोते हैं कि मैं हूं तब तक परिवार का काम चलता है। मैं न रहा तो न जाने क्या हो जाएगा? यह अहं अनेक व्यक्तियों में होता है और इसलिए वे मरते दम तक काम में लगे रहते हैं। काम को छोड़ना नहीं चाहते। यह भूलभरा चिन्तन है। होना तो यह चाहिए कि अमुक अवस्था में बाद कामकाज, व्यापार से निवृत्त होकर व्यक्ति दूसरी दिशा में प्रस्थान करे। उसे सोचना चाहिए, इतने वर्षों तक मैंने काम किया, अब दूसरों पर भरोसा करूं, उन्हें काम सौंप दूं। वह यह न सोचे कि मेरे आधार पर ही गाड़ी चल रही है। जब यह मिथ्या धारणा या अज्ञान पैदा होता है तब व्यक्ति डूब जाता है। यह अज्ञान बहुत खतरनाक है। यह अनेक समस्याएं पैदा करता है।

यह बात स्पष्ट समझ लेनी चाहिए कि कोरी प्रमाद की चेतना कर्त्ता के अहंकार को पैदा करती है। यह कर्त्तव्य का अहंकार समूचे जीवन में उलझनें उत्पन्न करता है। ये उलझनें संघर्ष और कलह को जन्म देती हैं। हम सुनते हैं, मैं था तब यह हो गया, अन्यथा कठिनाई होती। यदि मैं नहीं होता तो तुम्हें पता चलता। इस प्रकार की अहंकारपूर्ण भाषा समूचे समाज में व्याप्त है। न जाने कितने लोग इस प्रकार की बड़ी-बड़ी बातें बनाते हैं। यह टकराव का एक कारण बनता है।

इसलिए अप्रमाद की चेतना का विकास बहुत आवश्यक है। अप्रमाद की चेतना का अर्थ है- अपने प्रति जागरूक होना। व्यक्ति जितना अपने प्रति जागरूक होता है उतना ही ज्ञाता और द्रष्टा की चेतना का विकास होता है और कर्त्ता की चेतना में आने वाले रोध और बाधाएं कम हो जाती हैं। धीरे-धीरे एक दिन वे सब समाप्त हो जाती हैं।

ध्यान के अभ्यास-काल में हम यह प्रयोग करें कि घटनाओं से अप्रभावित रहकर, जितना जो कुछ शरीर में हो रहा है, उसे जानते-देखते रहें। शरीर में दर्द है। एकाग्रता में उसकी तीव्र अनुभूति होगी। पर दर्द को जान लिया, उससे प्रभावित नहीं हुए। प्रिय-अप्रिय संवेदन से भी प्रभावित नहीं हुए। यदि यह क्रम चला तो धीरे-धीरे चलते-चलते हम उस बिंदु पर पहुंच सकते हैं, जहां ज्ञाता-द्रष्टा की चेतना पूर्ण विकसित हो जाए और अप्रमाद की स्थिति प्राप्त हो जाए। दुनिया में घटित होने वाली घटनाओं के प्रभाव से हम अप्रभावित रह सकें। यह अप्रभावित चेतना एक ऐसा मार्ग है जिसके द्वारा आदमी हजारों समस्याओं और हजारों दुःखों के बीच रहकर भी अपने सुख और आनन्द को अबाधित और अव्याबाध रख सकते हैं।

ये बाधाएं क्यों आती हैं? ये विघ्न क्यों आते हैं? कारण भी खोजना चाहिए। विघ्नों के दो स्रोत हैं- एक भीतरी, दूसरा बाहरी। कुछ विघ्न अपने आन्तरिक कारणों से पैदा होते हैं और कुछ विघ्न बाहरी कारणों से आते हैं। मनुष्य प्रभावित होता है। प्रभावित होना एक विघ्न है। परिस्थिति से प्रभावित होता है। आसपास के वातावरण से प्रभावित होता है। दूसरे की वाणी से और दूसरे के चिन्तन से प्रभावित होता है। प्रभावित होना एक बड़ी बाधा है।

साधना की निष्पत्ति वीतरागता

आचार्य महाश्रमण

हर प्राणी संसार में जीता है। इस संसार की न आदि है और न अंत। इसकी परंपरा आगे से आगे परंपरित हो रही है। प्रश्न हो सकता है कि संसार की परंपरा को, जन्म-मरण की परंपरा को चलाने वाला कौन है? आदमी केवल ऊपर देखता है। मूल को देखे बिना समस्या का स्थायी समाधान नहीं हो सकता। मूल को पकड़ना चाहिए। आचारांग सूत्र में कहा गया– '**अग्गं च मूलं च विगिन्च धीरे।**' आदमी अग्र को देखे और मूल भी देखे। मूल को देखने पर पता चलता है कि इस संसार को चलाने वाला तत्त्व है– मोह। अगर मोह न रहे तो संसार का चलना भी असंभव हो जाए। जब तक मोह है, तब तक संसार है। मोक्ष एक सचाई है तो संसार भी एक सचाई है। अनंत जीव मोक्ष चले गए, अनंत चले जाएंगे, उसके बाद भी अनंत-अनंत जीव संसार में बने रहेंगे। साधना के लिए उन्मुख व्यक्ति को इस बात पर विचार करना चाहिए कि मुझे मोहविजय की साधना करनी है। यदि मोहविजय नहीं हुआ तो साधना की निष्पत्ति नहीं आ सकती। मोह एक ऐसा सेनापति है, जिसके निर्देशन में संसार के सारे सांसारिक काम हो रहे हैं।

आदमी के भीतर मोह रहता है तो साथ में अमोह भी रहता है। जैन सिद्धांत के अनुसार कोई जीव ऐसा नहीं है, जिसके कुछ अंशों में मोह का विलय न हो, ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम न हो। विपरीत बातें भी साथ-साथ रह सकती हैं। आत्मा में ज्ञान है तो अज्ञान भी है। शक्ति है तो शक्तिहीनता भी है। अनेक चीजें एक साथ रह सकती हैं।

एक बालिका हार पिरो रही थी। उसके सामने कांच के टुकड़े, स्वर्ण-खंड और मणियां पड़ी थीं। वह तीनों को एक साथ पिरो रही थी। उसके सामने से एक विद्वान व्यक्ति निकला। वह बालिका के इस कृत्य को देखकर कहने लगा– '**काचं मणिं कांचनमेकसूत्रे, ग्रथ्नासि बाले! तव को विवेकः।**' बालिके! यह तुम्हारा कैसा विवेक है? जो इन तीनों को एक साथ पिरो रही हो। बालिका भी बड़ी तेज थी, संस्कृत व्याकरण को जानने वाली थी, उसने कहा– 'पंडित महोदय! मैंने कौन-सा गलत काम कर दिया? कौन-सा अपराध कर दिया? संस्कृत के महान व्याकरणाचार्य पाणिनि ने भी एक सूत्र में तीन चीजों को पिरोया है। '**महामतिः पाणिनिरेकसूत्रे श्वानं युवानं मघवानमाह।।**' तीन चीजें कौन-सी? कुत्ता, युवा और इंद्र। संस्कृत व्याकरण 'कालू कौमुदी' का एक सूत्र है– **श्वनयुवनमघोनामपिस्यात्छुटि च ङ.**' कहां मेल बैठता है इन तीनों में? कहां तो कुत्ता, कहां युवक और कहां इंद्र? जब पाणिनि जैसे महान पंडित ने भी इन तीनों को एक सूत्र में पिरोया है तो मैंने कांच, मणि और स्वर्ण को एक सूत्र में पिरोकर कौन-सा गलत काम कर दिया?

इस दुनिया का यह नियम है कि इसमें विपरीत धर्मों वाली अनेक चीजें एक साथ रह सकती हैं। आदमी के भीतर मोहात्मक चेतना भी है और अमोहात्मक चेतना भी है। आदमी निरंतर जागरूक रहे कि मुझे अमोह की साधना में आगे बढ़ना है। साधना करने में माध्यम बनता है– हमारा शरीर। इस शरीर के द्वारा धर्म की आराधना भी की जा सकती है, तपस्या भी की जा सकती है, स्वाध्याय भी किया जा सकता है, हिंसा भी की जा सकती है तो इस शरीर से अधर्म भी किया जा सकता है, चोरी भी की जा सकती है और अनेक पापाचरण किए जा सकते हैं। शरीर तो एक माध्यम है। इसका उपयोग कहां, किस रूप में किया जाए, यह व्यक्ति के विवेक पर निर्भर करता है। आदमी का शरीर अक्षम भी बन सकता है और सक्षम भी बन सकता है। व्यक्ति इस बात पर ध्यान दे कि जब तक मेरा शरीर सक्षम है, तब तक मैं अधिक-से-अधिक साधना

> **सामान्य आदमी संसार के प्रवाह के साथ बहता है, अनुस्रोतगामी होता है। परंतु जिसको कुछ होना है, कुछ बनना है, आध्यात्मिक साधना का प्रयोग करना है, उसे प्रतिस्रोतगामी बनना होगा, प्रवाह का सामना करना होगा। तभी वह अमोह की, अध्यात्म की साधना कर सकेगा।**

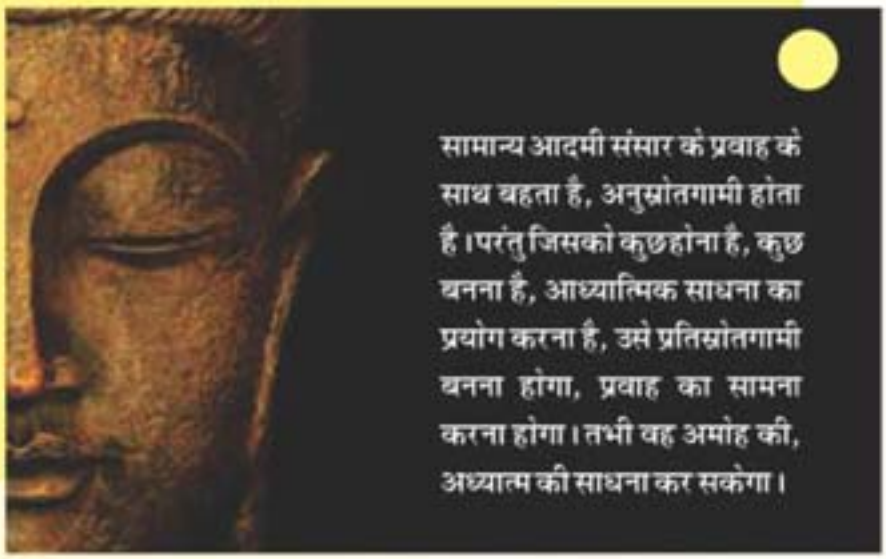

आदमी केवल ऊपर देखता है। मूल को देखे बिना समस्या का स्थायी समाधान नहीं हो सकता। मूल को पकड़ना चाहिए। आचारांग सूत्र में कहा गया- 'अग्गं च मूलं च विगिन्च धीरे।' आदमी अग्र को देखे और मूल भी देखे। मूल को देखने पर पता चलता है कि इस संसार को चलाने वाला तत्त्व है- मोह। अगर मोह न रहे तो संसार का चलना भी असंभव हो जाए। जब तक मोह है, तब तक संसार है।

कर लूं। शरीर की अक्षमता के बाद साधना करने में कठिनाई उत्पन्न हो सकती है। दसवेआलियं में कहा गया—

जरा जाव न पीलेइ, वाही जाव न वड्ढइ।
जाविंदिया न हायंति, ताव धम्मं समायरे।।

जब तक बुढ़ापा पीड़ित न करे, व्याधि न बढ़े औ इंद्रियां क्षीण न हों, तब तक धर्म का आचरण कर लेना चाहिए। हालांकि धर्म तो हर स्थिति में करणीय है किंतु साधना के विशेष प्रयोग करने हो, कठोर साधना करनी हो तो शरीर की सक्षमता भी आवश्यक होती है। विशेष साधना के लिए शरीर का भी विशेष होना जरूरी माना गया है। केवलज्ञान की प्राप्ति हर किसी व्यक्ति को नहीं हो सकती। अन्य अनेक बातों के साथ शरीर का संहनन भी मजबूत होना चाहिए, पूर्णतः सक्षम होना चाहिए, तभी कैवल्य की उपलब्धि हो सकती है। जब वृद्धावस्था आ जाती है, शरीर अक्षम बन जाता है, आंख, कान, नाक, हाथ, पैर आदि जवाब दे देते हैं फिर विशेष साधना तो दूर सामान्य साधना भी सम्यक् प्रकार से नहीं हो सकती।

संसार में मोह चलता है— मोह का अधिक संबंध स्वार्थ के साथ होता है। यदि स्वार्थ नहीं है तो कई बार मोह भी नहीं होता है। स्वार्थ संबंधी व्यक्ति का वियोग होने पर मन दुःखी बन जाता है जबकि जिसके साथ स्वार्थ का संबंध नहीं होता, उसका वियोग होने पर दुःख नहीं होता। आदमी का स्वार्थ भी एक तरह का मोह ही होता है। मोह के अभाव में परिवार, समाज और देश का सामाजिक विकास अवरुद्ध हो सकता है। आपसी रिश्ते बिखर सकते हैं। व्यवहार के धरातल पर जहां मोह भी कहीं-कहीं अनिवार्य हो जाता है, वहीं अध्यात्म के धरातल पर मोहातीत चेतना का, संबंधातीत चेतना का विकास आवश्यक माना गया है।

सामान्य आदमी संसार के प्रवाह के साथ बहता है, अनुस्रोतगामी होता है। परंतु जिसको कुछ होना है, कुछ बनना है, आध्यात्मिक साधना का प्रयोग करना है, उसे प्रतिस्रोतगामी बनना होगा, प्रवाह का सामना करना होगा। तभी वह अमोह की, अध्यात्म की साधना कर सकेगा। सरदारशहर निवासी सुमेरमलजी दूगड़, जिनके योग्य, कर्मठ और युवा पुत्र का अचानक देहावसान हो गया, उस समय मानो पूरा सरदारशहर रो रहा था किंतु सेठ साहब की स्थिति काफी अमोह की स्थिति बनी रही। वे रोने वाले लोगों को संबल दे रहे थे। मोह न करने की प्रेरणा दे रहे थे। संयोग और वियोग की सचाई को समझाने का प्रयास कर रहे थे। ऐसे व्यक्ति समाज के लिए आदर्श बन सकते हैं, प्रेरणास्रोत बन सकते हैं। गार्हस्थ्य में रहते हुए भी व्यक्ति साधना करे, अभ्यास करे तो अमोह की दिशा में आगे बढ़ सकता है, विकास कर सकता है।

कभी-कभी महापुरुष कहलाने वाले व्यक्ति भी मोह के चक्रव्यूह में इस तरह फंस जाते हैं कि बाहर निकलना मुश्किल हो जाता है। रामचरित्र में बताया गया कि जब लक्ष्मण का देहावसान हो गया तब मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की क्या स्थिति बनी। अपने अनुज के मोह में इतने विह्वल हो गए कि वे महीनों तक भाई के शव को अपने कंधों पर लिए घूमते रहे। वे यही मानते थे कि लक्ष्मण अभी जीवित है। इस भ्रांति से वे कभी लक्ष्मण को सहलाते तो कभी खिलाते। कभी वैद्य को बुलाते। वैद्य तो इस सचाई को जानते थे कि लक्ष्मण मर चुका है, अब किसे ठीक करें? किंतु श्रीराम इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं थे। कहा जाता है, जब देवों ने देखा कि राम जैसे महापुरुष भी मूढ़ बन गए हैं, मोहाक्रांत हो गए हैं, तब वे आदमी का रूप बनाकर श्रीराम के सामने आए और पत्थर पर कमल उगाने का प्रयास करने लगे। राम ने जब यह दृश्य देखा तो कहने लगे— आप कैसा बेहूदा प्रयास कर रहे हैं? पत्थर पर कमल कैसे उगेगा? देवों ने कहा— यदि पत्थर पर कमल नहीं उग सकता तो मरा हुआ व्यक्ति पुनः कैसे जीवित हो सकता है? लक्ष्मण तो मर चुका है। इस प्रकार देवों ने श्रीराम के मोहावरण को दूर करने का प्रयास किया।

मोह को विफल करने का सशक्त उपाय है— अमोह की साधना। जैसे-जैसे अमोह की चेतना जागती है, मोह दूर होता चला जाता है। साधना के द्वारा, अभ्यास के द्वारा, ध्यान के द्वारा, चिंतन के द्वारा मोह पर विजय प्राप्त किया जा सकता है और अपनी आत्मा को वीतरागता की दिशा में आगे बढ़ाया जा सकता है।

आचार्य महाप्रज्ञ के काव्य–सृजन के बारे में कुछ कहना अतिरंजना होगी। आइये मुग्ध भाव से इस सृजन को आत्मसात् करने का प्रयास करें। – सम्पादक

❁ आचार्य महाप्रज्ञ

बीज और फल

बीज तुम्हीं हो और तुम्हीं फल।
तुम ही नौका तुम ही नाविक,
और तुम्हीं हो अतुल जलधि जल,
वाणी तुम ही तुम्हीं मौन हो,
तुम्हीं नींद हो तुम ही हलचल।

तुम्हीं पवन हो बादल तुम ही,
तुम्हीं स्नेह हो और तुम्हीं खल,
तुम्हीं चरण हो पथ हो तुम ही,
उलझन तुम ही और तुम्हीं हल।

तुम्हीं चिन्त्य हो चिन्तक तुम ही,
तुम्हीं व्यक्त हो और तुम्हीं छल,
तुम्हीं देव हो अर्चा तुम ही,
चिर अनन्त तुम और तुम्हीं पल।

अवगुंठन तुम और तुम्हीं मुख,
तुम्हीं अटल हो और तुम्हीं चल,
साध्य तुम्हीं हो साधन तुम ही,
तुम्हीं स्वर्ग हो तुम्हीं मरुस्थल।।

कोंपल और कुल्हाड़ी

कोंपल और कुल्हाड़ी को भी, साथ लिये तुम चल सकते हो!
कमी नहीं धरती पर पथ की, कमी नहीं है रोड़ों की भी,
पग-पग पर फिर जाल बिछा है, कमी नहीं मोड़ों की भी,
घूंट सुधा की और गरल की, पी-पी कर भी पल सकते हो!

बहुत जलाने वाले हैं पर, पल-पल उनके लिए जलो तो,
बहुत चलाने वाले हैं पर, पग-पग उनके लिए चलो तो,
किन्तु तिमिर के घन अंचल में, जलना हो तो जल सकते हो!

सच उसने अपराध किया है, तुम भी उसको सहलाओगे,
इसीलिए बस पाप, पाप से मिट सकता, मन बहलाओगे,
यह अंधा बनने का सांचा, इसमें क्या तुम ढल सकते हो?

सन्देहों की स्याही से तुम, लिखते हो विश्वास कहानी,
कस कर भी तुम जन मानस को, करते हो अपनी मनमानी,
लम्बी है रजनी उससे क्या, जीवन पृष्ठ बदल सकते हो?

झांक रहा है सूर्य तुम्हें ही, आवरणों की इस छाया में,
ढूंढ रहे हो तुम सूरज को, स्मृत-विस्मृत की मधु माया में,
शरद-चन्द्र की स्निग्ध रश्मि को, पीकर आग उबल सकते हो!

मानव का विस्तार हो रहा, मानवता बस सिमट रही है,
अपने को खोकर मानव की, मति सोने से चिपट रही है,
जम सकते हो तीव्र ताप बन, पाकर शीत पिघल सकते हो!

अपनाने को हाथ बढ़ाओ, सब अपना ही अपना होगा,
और भूल जाओ भूलों को, सब सपना ही सपना होगा,
देख देख नन्हीं कलियों को, अब भी मित्र! संभल सकते हो!

प्रेक्षा-रहस्य

आचार्य महाप्रज्ञ के प्रवचनों में बहुधा प्रेक्षा के रहस्यों का उद्घाटन होता रहा है। 'प्रेक्षा-रहस्य' स्तम्भ इन तथ्यों की प्रस्तुति की एक शृंखला है। सुधि पाठकों और जिज्ञासुओं के ध्यान-साधना के विभिन्न प्रश्नों का समाधान इस स्तम्भ के माध्यम से हो सकेगा, ऐसा विश्वास है — सम्पादक

ग्रन्थियों के स्राव का संतुलन

आसन, रंग ध्यान, प्रेक्षा और स्वतःसूचना- इनके द्वारा ग्रन्थि-स्राव को संतुलित किया जाता है।
इड़ा, पिंगला नाड़ियों में प्राण-प्रवाह संतुलित कर अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के स्राव और मस्तिष्क के रासायनिक स्राव नियन्त्रित किए जा सकते हैं।
शशांकासन का आधा घंटा या एक घंटा तक अभ्यास करने से एड्रीनल ग्रन्थि पर नियंत्रण होता है।
सुप्तवज्रासन से स्वास्थ्य केन्द्र और भुजंगासन से तैजस केन्द्र पर नियंत्रण होता है।
सर्वांगासन से विशुद्धि केन्द्र जागृत होता है।

हॉर्मोन्स का संतुलन

एड्रीनलाइन के स्राव से मन व शरीर को हठात् अधिक शक्ति प्राप्त होती है। इसके अधिक स्राव से तनाव व निराशा उत्पन्न होती है। थायराइड ग्रन्थि से स्रावित होने वाला थायराक्सिन चयापचय की दर को नियंत्रित करता है। इसका अतिस्राव शरीर एवं मन में तनाव व उत्तेजना पैदा करता है। इसका कम स्राव शरीर में थकान एवं मन में आलस्य पैदा करता है। अन्य हॉर्मोन्स हमारे प्रजनन संबंधी अंगों को नियंत्रित करते हैं तथा मेल एवं फीमेल सम्बन्धी हॉर्मोन्स पुरुषत्व एवं स्त्रीत्व प्रदान करते हैं। इनकी कमी-बेशी मनुष्य को नपुंसक या कामुक बना देती है।
वात, पित्त और कफ का वैषम्य रोग और उनका साम्य आरोग्य है। इस आयुर्वेदीय सिद्धान्त के आधार पर आयुर्विज्ञान का यह सिद्धान्त स्थापित किया जा सकता है कि हॉर्मोन्स के स्राव का असंतुलन रोग और उनका संतुलन आरोग्य है।

सौरमंडल और ग्रन्थितन्त्र

ग्रहों का प्रभाव भौतिक जगत के पदार्थ अणुओं पर भी पड़ता है और चेतन जीवाणुओं पर भी। इसी प्रकार हमारे शरीर के क्रिया-कलाप पर ही नहीं, भाव संस्थान पर भी वे ग्रन्थियां प्रभाव डालती हैं।

ग्रह (Planet)	ग्रन्थि (Gland)
सूर्य	पाइनियल
चन्द्र	पिट्यूइटरी
बृहस्पति	एड्रीनल
बुध	थायराइड
शुक्र	थायमस
मंगल	पेराथायराइड

सौरमंडल के ग्रहों और शरीरगत हॉर्मोन्स की प्रकृति की तुलना करते हुए यह संगति बिठाई गई है।

रासायनिक नियन्त्रण प्रणाली

हमारे शरीर में दो प्रकार की नियंत्रण प्रणालियां हैं। पहली रासायनिक नियंत्रण प्रणाली, जो स्वतःचालित है एवं दूसरी विद्युत नियंत्रण प्रणाली, जिसमें हम अपनी बुद्धि का थोड़ा-बहुत उपयोग कर सकते हैं।
रासायनिक नियंत्रण प्रणाली का संचालन अंतःस्रावी ग्रन्थियों द्वारा होता है। इसका स्राव सीधा रक्त में मिलकर शरीर को प्रभावित करता है।
ये स्राव शरीर को संतुलित करते हैं। परन्तु यदा-कदा ये असंतुलित भी हो जाते हैं, जिससे शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं। ध्यान के प्रयोगों द्वारा इन स्रावों को संतुलित किया जा सकता है।

सकारात्मक दृष्टिकोण और आत्मविश्वास

मुनि धर्मेश कुमार

सकारात्मक दृष्टिकोण

सर्वांगीण व्यक्तित्व विकास के लिए आत्मविश्वास की सुदृढ़ता नितान्त आवश्यक है। आत्मविश्वास का स्रोत हमारी स्वयं की दृष्टि है। कहा भी जाता है, जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि। हम प्रायः अपने दृष्टिकोण से ही स्वयं और दूसरों के आचार, विचार और व्यवहार का निर्णय करते हैं। सामान्यतया जीवन में व्यक्ति उसको ही मूल्य देता है, जिसको वह स्वयं महत्त्वपूर्ण मानता है, अच्छा मानता है अथवा जिस क्षेत्र में उसकी योग्यता अच्छी होती है। वस्तुतः जीवन में घटने वाली किसी भी घटना या परिस्थिति का अपना स्वतंत्र मूल्य नहीं होता है। व्यक्ति उसे जिस दृष्टिकोण से ग्रहण करता है वह ही उसका मूल्य हो जाता है। एक व्यक्ति के लिए टिकट की लम्बी कतार में खड़ा होना परेशानी का कारण बन सकता है। वहीं दूसरी तरफ दूसरे व्यक्ति के लिए यह एक सामान्य दैनिक घटना भी हो सकती है। अतः हमारा दृष्टिकोण ही हमारे जीवन को अर्थ प्रदान करता है। हम अपने आपको कैसे देखते हैं? स्वयं की क्या व्याख्या करते हैं? उसका हमारे जीवन की प्रत्येक प्रवृत्ति पर बहुत गहरा असर पड़ता है। जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण से हमारा आत्म-विश्वास सुदृढ़ बनता है।

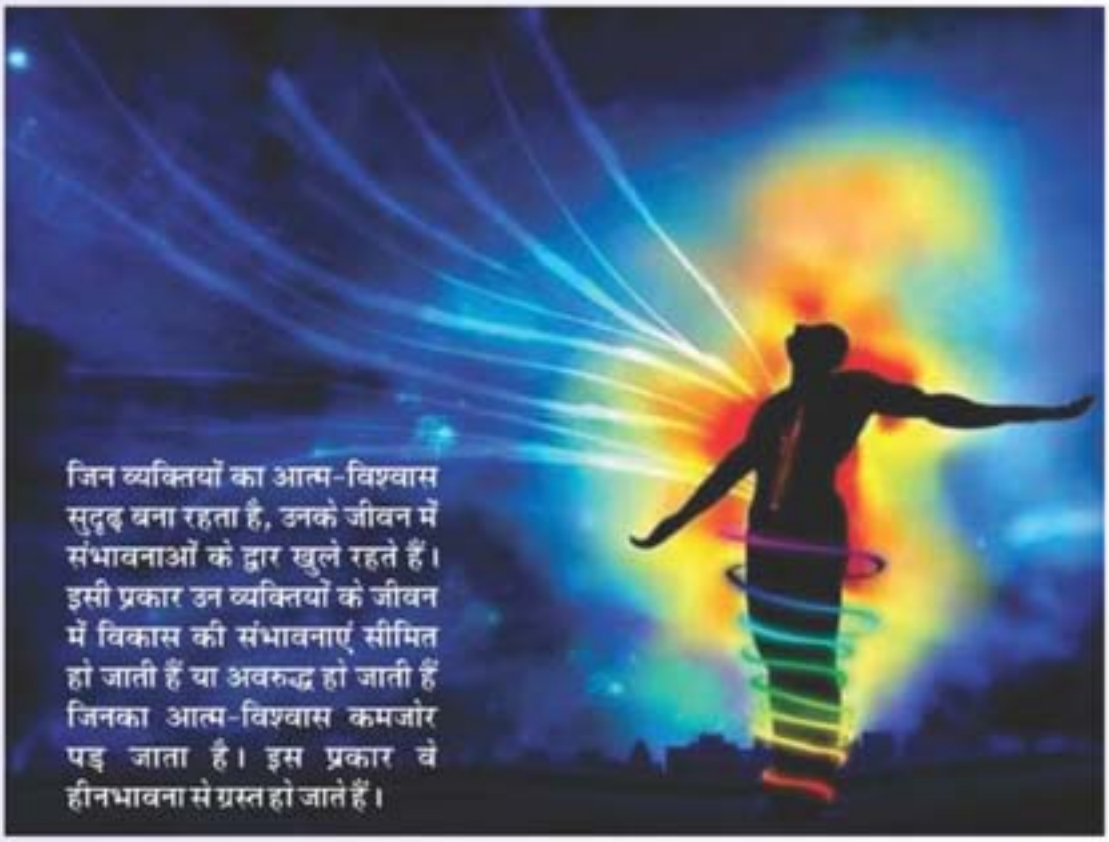

जिन व्यक्तियों का आत्म-विश्वास सुदृढ़ बना रहता है, उनके जीवन में संभावनाओं के द्वार खुले रहते हैं। इसी प्रकार उन व्यक्तियों के जीवन में विकास की संभावनाएं सीमित हो जाती हैं या अवरुद्ध हो जाती हैं जिनका आत्म-विश्वास कमजोर पड़ जाता है। इस प्रकार वे हीनभावना से ग्रस्त हो जाते हैं।

स्वयं को सकारात्मक दृष्टि से देखने से स्वयं का ज्ञान पुष्ट होता है। स्व-ज्ञान से स्वयं पर विश्वास पुष्ट होता है। इससे आत्म-शक्ति (मनोबल) का जागरण होता है। शक्ति से व्यक्ति सदाचार की दिशा में प्रस्थान करता है। जैनाचार्य उमास्वाति ने भी मोक्ष मार्ग (शान्ति मार्ग) के सूत्र को प्रस्तुत करते हुए बताया– **'सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः'** सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र से मोक्ष मार्ग की प्राप्ति होती है।

आत्म-विश्वास : अर्थ एवं स्वरूप

आत्म-विश्वास का प्रभाव हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर पड़ता है। अपनी सफलता या असफलता और आपसी सम्बन्धों पर इसका गहरा प्रभाव पड़ता है। एक सुदृढ़ आत्म-विश्वास से सम्पन्न व्यक्ति के जीवन में प्रसन्नता, संतुष्टि और सार्थक उद्देश्य सहज ही दिखाई देते हैं। आत्म-विश्वास क्या है? यहां दो शब्द प्रयुक्त हुए हैं– आत्म और विश्वास। आत्मा का तात्पर्य यहां पर दार्शनिक शब्द 'आत्मा' से नहीं है। यहां इसका अर्थ– स्वयं, अपना या खुद से है। हम जैसा भी वर्तमान में स्वयं को अनुभव करते हैं, उससे है। विश्वास का अर्थ– निष्ठा, आस्था, प्रतीति आदि है। आत्म-विश्वास का शाब्दिक अर्थ हुआ– स्वयं में आस्था और स्वयं के विभिन्न विश्वास।

आत्म-विश्वास अपने आप पर विश्वास का एक स्तर है। यह स्वयं की स्वीकृति है कि हम अपने आपको कितना स्वीकार करते है। हमारे भीतर अच्छाई एवं बुराई दोनों का अस्तित्व है। उसको जैसा है, वैसा स्वीकार करते हैं या नहीं। मानसिक रूप से स्वयं को हम कितना अच्छा या स्वस्थ महसूस करते हैं? इस प्रकार आत्म-विश्वास का तात्पर्य हुआ–

१. हम अपने आपके प्रति जो विश्वास करते हैं।
२. हम अपने आपके बारे में जैसा अनुभव करते हैं।
३. हम अपने आपके प्रति जो दृष्टिकोण रखते हैं।
४. हमारी विभिन्न धारणाएं और विश्वास जो जीवन और जगत् के प्रति हैं।

कार्य के प्रति अपने विश्वास से ही व्यक्ति किसी कार्य से पूर्ण रूपेण जुड़ सकता है। अथवा किसी भी सार्थक उद्देश्य की प्राप्ति में वह सर्वात्मना समर्पित हो जाता है। जब व्यक्ति में स्वयं के प्रति ऐसा विश्वास नहीं होता कि मैं अमुक कार्य कर सकता हूं तब तक वह कार्य के प्रति सर्वात्मना प्रयत्न भी नहीं कर पाता है। आत्म-छवि, स्वाभिमान, आत्म-गौरव, आत्म-सम्मान, सम्यक् दृष्टिकोण जैसे शब्दों के साथ आत्मविश्वास का बहुत निकटता का सम्बन्ध है।

'स्वयं के विश्वास'

आत्म-विश्वास अर्थात् स्वयं पर विश्वास या स्वयं के विश्वास। स्वयं के विश्वास नई सूचनाओं को ग्रहण करने के लिए छलनी का काम करते हैं। जो सूचना हमारे विश्वासों के साथ मेल नहीं खाती उसे छांट दिया जाता है। उसे ग्रहण नहीं किया जाता। उसे महत्त्व भी नहीं दिया जाता है। दूसरी ओर जो सूचनाएं स्वयं के विश्वासों से मेल खाती हैं उन्हें आसानी से स्वीकार कर लिया जाता है।

इस प्रकार 'स्वयं के विश्वास' नई सूचनाओं (ज्ञान) को ग्रहण करने में साधक या बाधक बनते हैं। वैसे ही नये कार्यों को करने, सम्बन्धों के निर्वाह करने या किसी भी समस्या का समाधान करने में भी 'स्वयं के विश्वास' साधक या बाधक बनते हैं। अतः स्वयं पर विश्वास को कैसे पुष्ट करें? स्वयं के विश्वासों को सकारात्मक कैसे बनाये रखें? प्रत्येक व्यक्ति को जीवन में सफल होने के लिए इसका बोध आवश्यक है।

उतार-चढ़ाव

आत्म-विश्वास वस्तुतः स्वयं की उपयोगिता, स्वयं की मूल्यवत्ता, स्वयं के अस्तित्व की यथार्थता का स्वयं द्वारा मूल्यांकन है। यह स्वयं द्वारा मूल्यांकन हमेशा हर कार्य में, हर परिस्थिति में एक जैसा स्थिर नहीं रहता। यह बदलता रहता है। हम सामने वाले व्यक्ति, घटना, कार्य अथवा परिस्थिति की तुलना में स्वयं को कैसे देखते हैं। उसी के अनुरूप हमारे आत्म-विश्वास पर न्यूनाधिक प्रभाव पड़ता है। वह भिन्न-भिन्न स्थिति में भिन्न-भिन्न हो जाता है।

आत्म-विश्वास और आत्म-हीनता

जीवन में संतोष, शांति व तृप्ति का रहस्य स्वयं को समझने में है। स्वयं की अन्तः भावनाओं को समझकर साहस के साथ समाज व समय के अनुरूप अपनी राह या पथ खोजने में है। इसी से व्यक्ति में संतुष्टि और आत्म-विश्वास बढ़ता है। जीवन में अनेक बार भावनाओं में परिवर्तन और उतार-चढ़ाव आता है। उस समय आत्म-विश्वास भी स्थिर नहीं रहता। वस्तुतः यह हमारे जीवन का अंग है। यह इस बात का संकेत भी है कि भावना और परिस्थितियों के बीच संतुलन का स्वतःप्रयास हो रहा है। हम जागरूक होकर सतत्य उन परिस्थितियों में परिवर्तन भी कर सकते हैं जो हमारे आत्म-विश्वास को कमजोर करते हैं।

अनेक बार व्यक्ति अपने आपको गौण कर अपनी क्षमता को पहचाने बिना केवल दूसरों की नकल करने लगता है। परिस्थितियों का गुलाम बन जाता है। स्वयं को समझने का प्रयास भी छोड़ देता है। इससे व्यक्ति की अपनी भावनाएं, इच्छाएं, कामनाएं, रुचियां दब जाती है। यह व्यक्ति को खालीपन का अहसास कराती है। इससे अशान्त होकर व्यक्ति उदासीन होने लगता है। दूसरों से भी कटने लगता है। ऐसी स्थिति व्यक्ति के लिए अत्यन्त पीड़ादायक होती है। इससे व्यक्ति का आत्म-विश्वास कमजोर होता है। व्यक्ति का आत्म-विश्वास जितना कमजोर होता है उतना ही वह स्वयं के प्रति लापरवाह होता चला जाता है। कुछ नया करने का उत्साह समाप्त हो जाता है। नवीनता को स्वीकारने की क्षमता क्षीण हो जाती है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को अन्तःप्रेरणा व स्वयं की क्षमता के प्रति जागरूक रह कर उसके अनुरूप तथा समयानुकूल व समाजोपयोगी लक्ष्य बनाना चाहिए।

इस प्रकार स्वयं के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण मानसिक रूप से व्यक्ति को निष्क्रिय बना सकता है। दूसरी ओर स्वयं के बारे में सकारात्मक दृष्टिकोण, सोच और धारणाएं व्यक्ति को सक्रिय और मिलनसार बनाने में सहायक होती हैं। परिस्थिति, तथ्य और मूल्य का सही दृष्टि से आकलन करने से ही आत्म-विश्वास को स्थिर व सुदृढ़ बनाया जा सकता है। आत्म-विश्वास केवल इस बात पर आधारित नहीं है कि व्यक्ति का वर्तमान कितना अच्छा है बल्कि उससे भी आगे वह इस बात पर निर्भर है कि उसमें अपनी अच्छाइयों को विकसित करने एवं बुराइयों से लड़ने की भावना कितनी मजबूत है। वह कितना अच्छा बनना चाहता है।

जिन व्यक्तियों का आत्म-विश्वास सुदृढ़ बना रहता है, उनके जीवन में संभावनाओं के द्वार खुले रहते हैं। इसी प्रकार उन व्यक्तियों के जीवन में विकास की संभावनाएं सीमित हो जाती हैं या अवरुद्ध हो जाती हैं जिनका आत्म-विश्वास कमजोर पड़ जाता है। इस प्रकार वे हीनभावना से ग्रस्त हो जाते हैं। व्यक्ति अपने जीवन के किन्हीं क्षेत्रों में कमजोरी का अनुभव करता है तथा कुछ क्षेत्रों में अपने आपको सबल एवं सक्षम पाता है। हम अपने जीवन के सक्षम क्षेत्रों, अवसरों, परिस्थितियों, गुणों एवं मूल्यों का सम्यक् आकलन करने से अपने आत्म-विश्वास को स्थिर व सुदृढ़ बना सकते हैं।

आत्म-हीनता के दुष्परिणाम

संक्षेप में जो व्यक्ति स्वयं के गुण-दोषों का सकारात्मक मूल्यांकन नहीं करते, स्वयं के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण नहीं रखते, सही धारणाएं नहीं बनाते–

१. उनके लिए दूसरों से सम्पर्क बनाना कठिन होगा।
२. उनके लिए सही निर्णय लेने और उसे क्रियान्वित करने में अनावश्यक समय और शक्ति लगेगी।
३. उनको अपने आस-पास का वातावरण असुरक्षित और भयावह लगेगा।
४. उनके लिए दूसरों के द्वारा की जा रही स्वयं की प्रशंसा को भी सही ढंग से लेने में कठिनाई होगी।
५. उनका अधिकांश समय इस चिन्ता में ही गुजर जायेगा कि दूसरे व्यक्ति मेरे बारे में क्या सोचते हैं?

आत्म-विश्वास के सुपरिणाम

यदि हम स्वयं के गुणों का सकारात्मक मूल्यांकन करते हैं, अपने दोषों को दूर करने के लिए स्वयं प्रयत्नशील हैं, अपने प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण व सोच रखते हैं, तो–

१. स्वयं में जीवट, शक्ति, उत्साह और सामर्थ्य का अहसास होगा।
२. स्वयं की क्षमता में विश्वास होगा।
३. स्वयं में विश्वास रहेगा कि मैं समस्या आने पर उसका समाधान कर सकूंगा। अपने से जितना होगा उसमें कोई कसर नहीं रखूंगा।

४. हमारे पास दूसरों को देने के लिए बहुत कुछ होगा।
५. अपनी प्रशंसा और प्रोत्साहन से अप्रभावित रह सकेंगे। अपना संतुलन बनाये रख सकेंगे।
६. हम दूसरों के सुझावों और प्रतिक्रियाओं को सुनने के लिए खुले रह सकेंगे एवं आलोचनाओं को भी सही ढंग से स्वीकार कर सकेंगे।

सुदृढ़ आत्म-विश्वास

अच्छा और सुदृढ़ आत्म-विश्वास होने का यह अर्थ कदापि नहीं है कि हम पूर्ण हो गये हैं या हममें विकास और परिवर्तन की कोई गुंजाइश नहीं है। इस स्थिति में भी त्रुटि हो सकती है, दूसरों की आलोचनाओं को सुनना पड़ सकता है, किन्तु ऐसे अवसरों पर हमें निराश और हताश नहीं होना। इससे भी हमें कुछ न कुछ सीखना है, आगे बढ़ने का प्रयत्न करना है।

सुदृढ़ आत्म-विश्वासी और कमजोर आत्म-विश्वासी की तुलनात्मक विशेषताएं–

क्र. सं.	सुदृढ़ आत्म-विश्वासी	कमजोर आत्म-विश्वासी
1.	विनम्र, अनुशासन प्रिय और मर्यादाओं का आदर करने वाला।	अहंकारी, आग्रही, उद्दण्ड और मर्यादाओं की अवहेलना करने वाला।
2.	चरित्र की सुरक्षा करने वाला।	झूठी इज्जत की चिन्ता करने वाला।
3.	सुदृढ़ निर्णय लेने वाला।	भ्रम, असमंजस व अनिर्णय में फंसने वाला।
4.	दायित्वशील, जिम्मेदारी को स्वीकार करने वाला।	दूसरों पर दोष मढ़ने वाला।
5.	सबके हित की बात करने वाला।	केवल अपने स्वार्थ की बात करना।
6.	आशावादी।	भाग्यवादी।
7.	दूसरों को समझने की कोशिश करने वाला।	स्वयं के लिए दूसरों की परवाह न करने वाला।
8.	सीखने की मनोवृत्ति वाला।	'मैं जानता हूं' की मनोवृत्ति वाला।
9.	संवेदनशील, दूसरों की पीड़ा को समझने वाला।	भावुक, छोटी-छोटी बातों में अस्थिर और असंतुलित होने वाला।
10.	एकान्तप्रिय।	अकेलेपन का बोझ ढोने वाला।
11.	बातों और संवाद स्थापित करने वाला।	बहस और तर्क-वितर्क करने वाला।
12.	आत्मगुण अर्थात् स्वयं की योग्यता और क्षमताओं में विश्वास करने वाला।	भौतिक साधन, धन आदि पर विश्वास करने वाला।
13.	अन्तःप्रेरणा से प्रेरित होने वाला।	बाह्य कारकों से प्रेरित होने वाला।

उपरोक्त तालिका के अनुसार स्वयं को समझना है, न कि स्वयं को दोषी मानना या अपराध बोध से ग्रसित होना है। यह जरूरी नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति में सारे लक्षण मिलते हों।

व्यक्ति अपनी विशेषताओं को समझकर, अच्छाइयों को विकसित करने का संकल्प लेकर तथा कमियों में सुधार कर आत्म-विश्वास को सुदृढ़ बना सकता है।

आत्म-विश्वास में अभिवृद्धि का उपाय

आत्म-विश्वास बढ़ाने का पहला चरण है- आत्मदर्शन। स्वयं को बार-बार देखने, अवलोकन करने अर्थात् प्रेक्षा से आत्म-विश्वास बढ़ता है। स्वयं की अच्छाइयों को समझने एवं उसके विकास की मानसिकता से आत्म-विश्वास की सुदृढ़ता पैदा होती है। इसके लिए अपने 'स्व' को जैसा है, वैसा स्वीकार करना पहली आवश्यकता है। अर्थात् अपनी अच्छाइयों व कमजोरियों को स्वीकार करना। स्वयं को स्वीकार करने से जो अच्छाइयां हैं उनको विकसित करने का संकल्प एवं जो कमियां हैं उनको दूर करने का साहस पैदा होता है।

हम दूसरों के सामने भी ईमानदारी के साथ स्वयं को प्रस्तुत करने का साहस जुटा लेते हैं। इससे हमें अपने बारे में अधिक से अधिक जानने में सहयोग मिलता है।

अपने आपको जानना वास्तव में इतना आसान नहीं है, जितना हम सोचते हैं। हम समाज के साथ अन्तःक्रिया में झूठी अवधारणाएं पाल लेते हैं। दूसरों की अपेक्षानुसार अपनी कमजोरियों को छिपाकर 'जो नहीं है' उसको भी प्रदर्शित करना शुरू कर देते हैं। प्रदर्शन और यथार्थ में दूरी बढ़ती चली जाती है। केवल दूसरों के मानदण्ड पर खरा उतरने के प्रयास से भीतर खालीपन महसूस होता है। अनुभव होता रहता है कि मैं जो चाहता हूं, वह नहीं कर पा रहा हूं। यह स्थिति अत्यन्त पीड़ादायक व असंतोष को उत्पन्न करने वाली होती है। किन्तु इस स्तर को स्वयं की तटस्थ प्रेक्षा के अभ्यास द्वारा तोड़ा जा सकता है।

प्रेक्षा एवं प्रेक्षा के परिणाम

आत्म-विश्वास जीवन के अनेक क्षेत्रों या पक्षों की प्रेक्षा, दर्शन या अवलोकन से विकसित होता है। जैसे-जैसे हमारा आत्म-विश्वास सुदृढ़ होता जाता है, वैसे-वैसे हम हमारे पास आन्तरिक अथवा बाह्य जो भी उपलब्ध है, उन सभी का सही आकलन कर पाने में समर्थ होते जाते हैं। हम किसी एक क्षेत्र पर निर्भर नहीं रहते हैं। हम समग्रता से स्वयं को देखने, समझने व सही मूल्यांकन करने की कोशिश करते हैं।

जैसे–

१. हमारे स्वयं के श्वास, शरीर, शक्ति के स्रोत, चैतन्य केन्द्र, आन्तरिक रंग (लेश्या) आदि।
२. हमारे आन्तरिक मूल्य, सिद्धान्त, विश्वास, धारणाएं, भावनाएं आदि।
३. हमारी उपलब्धियां, मानसिक क्षमताएं, आर्थिक सम्पदा, भौतिक संसाधन आदि।
४. हमारे स्वयं तथा दूसरों की अपेक्षाओं की पूर्ति का सामर्थ्य, प्राप्त अवसर, संभावनाएं, कार्यक्षमता आदि।
५. हमारे सामाजिक सम्बन्ध, सहयोग, स्नेह, प्रोत्साहन, पुरस्कार आदि।

परिपूर्णता के प्रयास

आत्म-विश्वास की सुदृढ़ता में अभिवृद्धि के साथ व्यक्ति निम्नलिखित गुणों में परिपूर्ण बनने का सतत प्रयास करता है–

१. आत्म-ज्ञान (Self-knowledge)– अपने आपको जानने का प्रयत्न।
२. आत्म-विश्वास (Self-confidence)– अपनी क्षमता, योग्यता, सबलता पर विश्वास।
३. आत्म-स्वीकृति (Self-acceptance)– अपनी अच्छाई का स्वीकरण। इससे हीनभावना दूर होती है तथा अपनी बुराइयों को भी साहस के साथ स्वीकार करने की क्षमता प्राप्त होती है।
४. आत्म-सम्मान (Self-respect)– अपनी अच्छाइयों का सम्मान एवं उन्हें विकसित करने का प्रयत्न। उनमें अपनी सम्पूर्ण शक्ति एवं समय के नियोजन का प्रयत्न।
५. आत्म-महत्त्व (Self-worth)– अपनी क्षमता, योग्यता व अच्छाइयों को महत्त्व। उनकी उपयोगिता और सार्थकता को समझना।
६. आत्म-अनुशासन (Self-discipline) - अपनी दुर्बलताओं और कमजोरियों को जीतने के लिए संघर्ष। उनमें शक्ति व समय न लगे, इसके लिए विशेष अनुशासन। योजनाबद्ध आगे बढ़ना। उनमें सुधार का निरन्तर प्रयत्न।
७. आत्म-संतुष्टि (Self-satisfaction) - स्वयं में संतुष्ट व प्रसन्न। अपने सामाजिक दायित्व एवं कर्त्तव्य के प्रति जागरूक।

मेरुदण्ड एवं कमरदर्द निवारण

समाकलन : मुनि किशनलाल

प्रयोगधर्मा मुनिश्री अपने अनुभवों के आधार पर प्रेक्षा-प्रयोगों का समाकलन प्रस्तुत कर रहे हैं। वैकल्पिक चिकित्सा के रूप में इसका अभ्यास कारगर हो सकता है। ऐसा विश्वास है – सम्पादक

समय
20 मिनट

मेरुदण्ड शरीर का आधारभूत अवयव है। उससे संलग्न कमर (कटि-भाग-Hip joint) है। लचक पड़ने पर कमर में दर्द होने लगता है। कभी-कभी कमर दर्द के साथ मेरुदण्ड के मनकों में भी लचक पड़ जाती है, वे खिसक जाते हैं। इससे उठने-बैठने और शारीरिक क्रिया करने पर भयंकर दर्द होने लगता है।

कारण

शारीरिक कारण –

भारी वजन उठाने, अधिक वजन उठाकर गलत तरीके से चलने से कमर और मेरुदण्ड में दर्द होने लगता है। गलत तरीके से सोने एवं गलत तरीके से उठने से भी समस्या पैदा हो जाती है।

मानसिक कारण –

दूसरों के दर्द या पीड़ा को देखकर स्वयं के बारे में निषेधात्मक चिन्तन करना कि मुझे ऐसा न हो जाए।

भावनात्मक कराण –

दूसरों से ईर्ष्या, घृणा तथा भयपूर्ण भावना।

निवारण के उपाय

आसन – मेरुदण्ड की क्रियाएँ, उत्तानपादासन, भुजंगासन, मकरासन, मत्स्यासन। (5 मिनट)

प्राणायाम – सूर्य भेदी प्राणायाम। दर्द के स्थान पर ध्यान केन्द्रित कर सूक्ष्म भस्त्रिका, नाड़ी शोधन प्राणायाम। (3 मिनट)

प्रेक्षाध्यान – अन्तर्यात्रा, शरीर प्रेक्षा। (7 मिनट)

अनुप्रेक्षा – मेरुदण्ड, कमर स्वस्थ होने का सुझाव– कमर दर्द शांत हो रहा है। (5 मिनट)

संदर्भ ग्रन्थ :-

1. तुम स्वस्थ रह सकते हो - जैन विश्व भारती, लाडनूं
2. स्वास्थ्य के लिए योग - राजा पॉकेट बुक्स, दिल्ली

समझ जीने की

साध्वी राजीमती

प्रेक्षाध्यान में विशेषज्ञता प्राप्त साध्वीश्री ने अपनी साधना से जो बोध प्राप्त किया है वह पाठकों के जीवन को समाधान देने वाला सिद्ध हो सके इस हेतु यह संकलन प्रस्तुत किया जा रहा है – सम्पादक

हम सहन क्यों करें ?

- स्वस्थ रहना है तो सहना सीखो।
- तनावमुक्त रहना है तो सहना सीखो।
- लोकप्रिय बनना है तो सहना सीखो।
- नयी दिशा लेना है तो सहना सीखो।
- शक्तिशाली बनना है तो सहना सीखो।
- सज्जन कहलाना है तो सहना सीखो।
- स्वभाव में रहना है तो सहना सीखो।
- मंत्र सिद्ध करना है तो सहना सीखो।
- प्रसन्न रहना है तो सहना सीखो।

सहिष्णुता का अर्थ

- अध्यात्म का पहला पाठ सहिष्णुता है।
- शक्ति का दूसरा नाम सहिष्णुता है।
- अनेकान्त व्यावहारिक सहिष्णुता है।
- अहिंसक बने रहना सहिष्णुता है।
- प्रतिक्रिया से बचना सहिष्णुता है।
- आत्म-नियंत्रण की कला सहिष्णुता है।
- सद्गति का कारक सहिष्णुता है।
- मनोबल की जननी सहिष्णुता है।
- विधायक-भाव की सखी सहिष्णुता है।

आत्म-उत्थान की प्रक्रिया

मुनि रश्मिकुमार

हमारे सामने दो तत्त्व हैं– शरीर और आत्मा (जड़ और चेतन)। आत्मा के उत्थान की चर्चा करें उससे पहले यह समझना आवश्यक है कि आत्मा क्या है और उसका शरीर से सम्बन्ध क्या है? बहनें रसोई बनाती हैं, अगर उन्हें यह पता न हो कि कौनसा खाद्य पदार्थ या पकवान कैसे बनाया जाता है तो वे रसोई या पकवान नहीं बना सकतीं। कुम्हार घड़ा बनाता है, अगर उसे यह पता ही नहीं है कि घड़ा बनाने में कौनसी मिट्टी या साधन काम में आते हैं तो वह घड़ा बना नहीं सकता। ठीक इसी प्रकार पहले आत्मा को जानना-समझना आवश्यक है।

इसी प्रकार शरीर को जाने बिना भी आत्मा के उत्थान की चर्चा करें तो बात अधूरी रह जाएगी, क्योंकि आत्मा का आयतन है शरीर और वह ही उसके उत्थान में सशक्त माध्यम बनता है। प्रसिद्ध सूक्त भी है– ''शरीर माद्यं खलु धर्मसाधनम्''– धर्म करने का माध्यम है शरीर और वह ही माध्यम बनता है सुख-दुःख अनुभव करने का। शरीर की परिभाषा देते हुए आचार्यश्री तुलसी ने 'जैन सिद्धान्त दीपिका' में सूत्र लिखा है– ''सुख-दुःखानुभव साधनम् शरीरम्''– जिसके द्वारा पौद्गलिक सुख-दुःख का अनुभव किया जाता है, उसे शरीर कहते हैं और जो सुख-दुःख का अनुभव करने वाला है, वह है आत्मा।

सूक्त की भाषा में– ''उपयोग लक्षणो जीवः''– जीव-आत्मा उसे कहते हैं, जिसमें उपयोग होता है, जानने-समझने की शक्ति होती है अर्थात् जिसके द्वारा अनुभव किया जाता है, उसे आत्मा कहते हैं। ज्योति-स्वरूप, अनंत-शक्ति सम्पन्न, देदीप्यमान आत्मा, न मारे मरता है न काटे कटता है। गीता के मननीय श्लोक है–

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः।।
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणु-रचलोऽयं सनातनः।।

आत्मा को न शस्त्र काट सकते हैं, न अग्नि जला सकती है, न पानी बहा सकता है। आत्मा अछेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य, अशोष्य, नित्य शाश्वत है। उसकी पर्यायें परिवर्तित होती हैं, जैसे एक ही देह में कुमारावस्था, युवावस्था व वृद्धावस्था होती है परन्तु देही वही रहता है। गीता अध्याय २, श्लोक तेरहवां

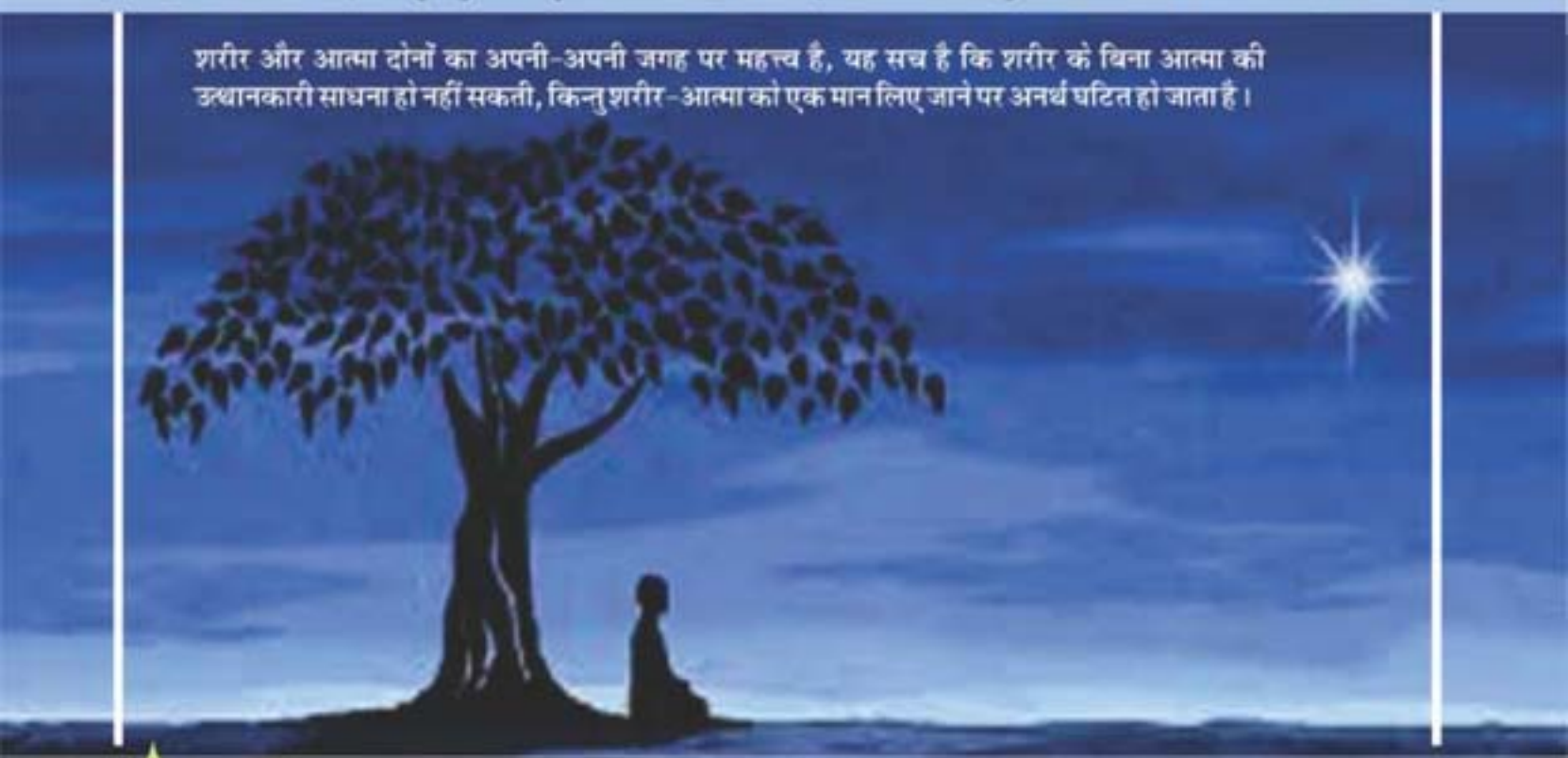

इस तथ्य को स्पष्ट करता है। श्लोक इस प्रकार है–

> ''देहिनोऽस्मिन्यथा देहे, कौमारं, यौवनं जरा।
> तथा देहान्तर प्राप्ति-र्धीर स्तत्र न मुह्यति।।

हां, तो उस अमरणधर्मा ज्योति-स्वरूप आत्मा का आगे से आगे विकास अर्थात् शुद्धात्म स्वरूप का प्रकटीकरण कैसे हो? अर्थात् आत्मा का उत्थान-ऊर्ध्वारोहण कैसे हो? इस पर मनन करना होगा। संसारावस्था में शरीर व आत्मा का सहावस्थान है। शरीर के बिना आत्मा और आत्मा के बिना शरीर अकिंचित्कर होते हैं। अतः अपने-अपने स्थान पर दोनों का महत्त्व है। परन्तु दोनों को एक मान लेना अर्थात् दोनों का घालमेल, दोनों के स्वरूप और उपयोगिता को बिगाड़ देता है। लोकधर्म और अध्यात्म धर्म के पार्थक्य को उजागर करने वाला भिक्षु स्वामी वाला घी और तम्बाकू का उदाहरण देह-आत्मा पर भी ठीक बैठता है– एक सेठ शुद्ध घी और सूंघने वाली उम्दा तपकीर-तम्बाकू का व्यापार करता था। सेठ ईमानदार व प्रामाणिक था। इसी प्रामाणिकता और सद्व्यवहार के कारण उसका व्यापार खूब अच्छा चलता था। उसके १५-१६ वर्ष का एक लड़का था, जो कुछ कम समझदार और भोले स्वभाव का था, किन्तु अपने आपको पिता से ज्यादा समझदार मानता था। एक बार किसी काम से पिता को किसी दूसरे गांव जाना था, तब उसने अपने बेटे को कहा– आज मैं किसी काम से बाहर जा रहा हूं, तुम दुकान पर चले जाना। लड़के ने कहा– ठीक है पर वहां जाकर करना क्या है? किस प्रकार माल बेचना है?

पिता ने कहा– अपनी दुकान पर दो ही प्रकार का माल है, एक तरफ के डिब्बों में सूंघने की बढ़िया तपकीर है और दूसरी कतार के डिब्बों में शुद्ध घी है, दोनों एक ही भाव के हैं। घी के ग्राहक को घी तोलकर दे देना और तपकीर के ग्राहक को तपकीर, मगर इस बात का ध्यान रखना, जब तक पहले वाले डिब्बे खाली न हों, तब तक दूसरे डिब्बे मत खोलना, ऐसा समझाकर पिता चला गया। पुत्र सेठ की तरह बन-ठनकर दुकान पर पहुंच गया। घी व तपकीर के डिब्बों को पास लाकर देखा, तो दोनों ही आधे-आधे मिले। बेवकूफ लड़के ने सोचा– मेरे बाप में अक्ल कम है, जब दोनों वस्तु एक भाव की है और आधी-आधी पड़ी है तो दोनों को एक कर एक डिब्बा खाली कर लेते, खैर! मैं ही एक कर लेता हूं। उस मूर्ख लड़के ने ''आव देखा न ताव''– दोनों को एक कर एक डिब्बा खाली कर दिया।

क्या उस लड़के को बुद्धिमान कहा जाएगा? नहीं ना? क्योंकि घी और तपकीर एक होकर अपना-अपना उपयोग ही खो देते हैं। जब तक दोनों अलग-अलग हैं, दोनों का अपनी-अपनी जगह मूल्य है, उपयोग है, महत्त्व है, पर एक कर देने पर दोनों की उपयोगिता समाप्त हो जाती है, मूल्य शून्य हो जाता है। ठीक इसी प्रकार शरीर और आत्मा दोनों का अपनी-अपनी जगह पर महत्त्व है। यह सच है कि शरीर के बिना आत्मा की उत्थानकारी साधना हो नहीं सकती, किन्तु शरीर-आत्मा को एक मान लिए जाने पर अनर्थ घटित हो जाता है। बहिरात्मा शरीर पोषण और इन्द्रिय सुख को ही सब कुछ मानता है, अन्तरात्मा अशाश्वत शरीर सुख-भोग, सुख की आकांक्षा त्यागकर आत्मकेन्द्रित होता है, आत्मोत्थान में लगता है। सही मायने में वही होता है– बुद्धिमान-विवेकशील।

ऐसे में प्रश्न होगा कैसे हो आत्मा का उत्थान? आत्मा के उत्थान में सहायक बनता है– प्रेक्षाध्यान, जिसका मूलाधार है– कायोत्सर्ग। कायोत्सर्ग का मूल प्राण है– देह के ममत्व का विसर्जन यानि शरीर-आत्मा का भेद विज्ञान। प्रेक्षा-प्रणेता आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के शब्दों में– '**प्रेक्षाध्यान केवल शिथिलीकरण, तनाव मुक्ति या एकाग्रता की पद्धति नहीं है, वह तो शरीर और आत्मा दोनों के भेद विज्ञान की पद्धति है।**' शरीर के माध्यम से आत्मोत्थान की यात्रा को परम शुद्धात्म स्वरूप तक पहुंचाना है। आत्म-उत्थान की प्रक्रिया को शिखर तक पहुंचाना है।

पुरुषार्थ

तात्त्विक दृष्टि से देखा जाए तो पुरुषार्थ की भी **अपनी सीमा होती है। कोई व्यक्ति यह** सोचे कि मैं जीव को अजीव बना दूंगा या अजीव **को जीव बना दूंगा तो उसका यह** पुरुषार्थ सफल नहीं हो सकता। कोई यह सोचे कि मैं अ**पने पुरुषार्थ से अभव्य जीव** को भव्य बना दूंगा अथवा भव्य को अभव्य बना दूंगा तो उस**का पुरुषार्थ भी सफल** नहीं हो सकता, क्योंकि अतीत में ऐसा कभी हुआ नहीं और भवि**ष्य में ऐसा कभी** होगा नहीं। इन शाश्वत सत्यों को कभी बदला नहीं जा सकता। परन्तु **जीवन की** सफलता के लिए पुरुषार्थ का भी बहुत महत्त्व है। यूरोप का एक बालक **जो कि** बिलकुल साधनविहीन था, उसने आरंभ में एक लुहार के यहां प्रशिक्षण लेना शुरू किया। वह दिन-भर भट्टी के सामने काम करता। रात को भी वह मोमबत्ती की रोशनी में काम किया करता था। वह सोने से पहले थोड़ा समय कुछ पढ़ने के लिए अवश्य लगाता था। उसने कठोर परिश्रम करके उस समय से इतना लाभ उठाया कि तीस वर्ष की आयु तक पूरे यूरोप की लगभग सभी महत्वपूर्ण भाषाओं का विद्वान बन गया। उस नवयुवक का नाम था–इयिहब्रेट। इयिहब्रेट ने अपनी शक्ति का सही उपयोग किया। श्रम का सम्यक् नियोजन किया और अनेक भाषाओं का ज्ञाता बन गया। पुरुषार्थ के लिए अपेक्षा है कि व्यक्ति पहले अपनी शक्ति का निर्माण करे और फिर उसका सही दिशा में प्रयोग करे।

– आचार्य महाश्रमण

आलोचना का सामना कैसे करें

❁ अशोक संचेती

बेंजामिन फ्रैंकलिन का कथन है– जिस तरह मृत्यु मानव जीवन का शाश्वत सत्य है, उसी तरह आलोचना भी शाश्वत सत्य है। कोई भी मनुष्य आलोचना से बच नहीं सकता। व्यक्ति के जीवन की सफलता, संवेगों की स्थिरता, प्रसन्नता इस बात पर निर्भर करती है कि वह अपनी आलोचना के प्रति किस तरह की प्रतिक्रिया व्यक्त करता है।

आलोचना दो प्रकार की होती है। पहली शालीन, तर्कपूर्ण और रचनात्मक होती है। दूसरी तीखी, प्रतिशोधपूर्ण और विध्वंसात्मक होती है। संवेदनशील स्वभाव के लोग आलोचना से काफी प्रभावित होते हैं। देखने में आता है कि शालीन, तर्कपूर्ण और रचनात्मक आलोचना बहुत कम होती है। व्यक्ति को तीखी, प्रतिशोधपूर्ण और विध्वंसात्मक आलोचना का सामना अधिक करना पड़ता है।

आलोचना का सामना तीन स्तरों पर किया जा सकता है : १. संवेग के स्तर पर, २. आत्म विश्लेषण के स्तर पर और ३. व्यावहारिक स्तर पर। आलोचना के प्रति संवेगात्मक प्रतिक्रिया को नियंत्रित करना कठिन होता है। वह व्यक्ति के अस्तित्व पर सीधी चोट करती है। इसीलिए अधिकतर लोग अपनी आलोचना सुनकर क्षुब्ध और क्रोधित हो उठते हैं। मगर इस तरह लोग अपने उन आलोचकों के मकसद को ही पूरा करते हैं, जो आलोचना के जरिए चोट पहुँचाना चाहते हैं। क्षोभ और क्रोध के जरिए आलोचना का सामना नहीं किया जा सकता। बल्कि स्वयं को नुकसान जरूर पहुँचाया जा सकता है। आलोचना की पहली प्रतिक्रिया उदासीनता होनी चाहिए। ऐसा कर पाना आसान नहीं होता। मगर प्रयत्न करने से संभव हो सकता है। अमेरिका के राष्ट्रपति हर्बर्ट हूवर से जब पूछा गया कि वे अपनी आलोचनाओं को शांतिपूर्वक कैसे सहन कर लेते हैं तो उन्होंने जवाब दिया, "मैं इंजीनियरिंग का विद्यार्थी रह चुका हूँ। समस्याओं को हल करने का मुझे प्रशिक्षण मिला है। मैं जानता हूँ कि जो लोग मेरी आलोचना करते हैं, उन्हें भी कभी न कभी वैसी ही आलोचना का सामना करना पड़ेगा। दूसरी बात है कि मैं चुप रहना पसंद करता हूँ। मैं अपने हृदय में क्रोध या क्षोभ को स्थान नहीं देता। जब आपके भीतर आंतरिक शांति होगी तो बाहरी आक्रमण से उसे भंग कर पाना संभव नहीं होगा।"

एक बात याद रखनी चाहिए कि आलोचकों के विरोध का सामना व्यक्ति को कदम-कदम पर करना पड़ता है। अपने संवेगों पर नियंत्रण करते हुए ऐसी तीखी आलोचनाओं का सामना किया जा सकता है और आत्म विश्लेषण की कसौटी पर आलोचना को कसते हुए आलोचक के क्रोध को शांत किया जा सकता है।

बाइबिल में कहा गया है– "अपने निंदक के लिए प्रार्थना करो। अगर वे चोट पहुँचाएँ तो उन्हें दुआ दो।" वर्तमान युग में सबके लिए इतना सहनशील हो पाना व्यावहारिक नहीं भी हो सकता है, मगर यह सच्चाई है कि चोट पहुँचाने वाले को क्षमा कर देने से आंतरिक प्रसन्नता मिलती है और पीड़ा का भाव कम हो जाता है।

आलोचना का सामना करते हुए हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि संसार में हमेशा कर्मठ और सच्चे लोगों को आलोचना का सामना करना ही पड़ता है। विशेषरूप से, जो अपनी राह स्वयं बनाते हैं और अपने महान लक्ष्य की पूर्ति के लिए उद्यम करते हैं, उन्हें ईर्ष्या और विरोध का सामना अवश्य करना पड़ता है। संसार के महापुरुषों की जीवनी पर दृष्टि डालने से पता चलता है कि किस तरह उन्हें तीखी आलोचना की स्थिति से गुजरना पड़ा। ऐसे बहुत सारे महापुरुषों को अपने क्रांतिकारी विचारों के कारण विरोधियों ने तरह-तरह की यातनाएँ दीं।

आत्म-विश्लेषण के स्तर पर आलोचना का सामना करने के लिए तटस्थ होकर इसका विश्लेषण करना चाहिए। प्रसिद्ध पियानोवादक व्लोडोर लेस्वीत्सकी ने कहा था– " हम दूसरों की असहमति से बहुत कुछ सीख सकते हैं। आलोचना हमें सोचने के लिए मजबूर करती है। दूसरी तरफ प्रशंसा हमें केवल गुदगुदाती है"। आलोचना होने पर पहले स्वयं से सवाल पूछना चाहिए कि क्या तथ्य में कोई सच्चाई है? अपनी त्रुटियों को छिपाने की जगह स्वीकार करना चाहिए। अगर ऐसा लगे कि आलोचना करने वाला सत्य कह रहा है तो विनम्रता पूर्वक अपनी गलती को स्वीकार कर लेना चाहिए। ऐसा करने पर अपने आप आलोचक का मुंह बंद हो जाएगा।

अपने आलोचक की योग्यता का विश्लेषण करना चाहिए। देखना चाहिए कि क्या वह गुणी और ईमानदार है? अगर ऐसा है तो फौरन उसकी आलोचना को हवा में उड़ा देना ठीक नहीं होगा। अगर ऐसा लगे कि प्रतिशोध अथवा ईर्ष्या की भावना से कोई आलोचना कर रहा है तो उसे गलत आलोचना समझना चाहिए।

जब आलोचना मिथ्या और क्षति पहुँचाने वाली हो तो उसका प्रत्युत्तर दिया जाना चाहिए। परंतु प्रत्युत्तर में केवल तथ्यों को स्पष्ट करना चाहिए। भूलकर भी आलोचक के प्रति प्रतिशोधात्मक बर्ताव नहीं करना चाहिए।

एक बात का हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि आलोचना अक्सर अतिरंजित होती है। ऐसे बहुत सारे लोग होते हैं जो तिल का ताड़ बनाने में विश्वास रखते हैं और भ्रामक बातें कहकर संबंधों को क्षतिग्रस्त बनाते हैं। एक व्यक्ति के मुंह से कही गई आलोचना दूसरा व्यक्ति जब तीसरे व्यक्ति को सुनाता है तो अपनी तरफ से नमक-मिर्च लगाना नहीं भूलता। साथ ही आलोचना के शिकार व्यक्ति को 'प्रतिशोध' लेने के लिए भी उकसाया जाता है।

अमेरिका में विद्यार्थियों की एक सभा को संबोधित करते हुए एक डीन ने शिक्षा मंत्री की नीतियों की आलोचना की। कई पत्रकार शिक्षा मंत्री के पास पहुँच गए और उनसे डीन के आरोपों का जवाब मांगा। शिक्षामंत्री ने उत्तेजित हुए बिना जवाब दिया– मेरी आलोचना करने वाले डीन महाशय एक विद्वान हैं। उनके विचारों का मैं सम्मान करता हूँ। अगर मेरी नीतियाँ गलत हैं तो मैं उनमें संशोधन करूँगा। इस जवाब से पत्रकार निराश हुए, क्योंकि वे शिक्षामंत्री से ऐसे जवाब की अपेक्षा नहीं रखते थे।

व्यावहारिक स्तर पर आलोचना का सामना करने के लिए अपने आलोचक के साथ संवाद की स्थिति कायम करनी चाहिए। आलोचना दोधारी तलवार होती है जो आलोचक को भी कष्ट पहुँचाती है। कोरे गप भी आलोचना के ही रूप होते हैं जो ईर्ष्या और असुरक्षा की भावना से उत्पन्न होते हैं। बहुत सारे लोग अपने व्यक्तित्व के निर्माण के प्रति ध्यान दिए बिना दूसरों की छवि बिगाड़ने में जुटे रहते हैं। अक्सर ऐसे लोग समाज में अपनी विश्वसनीयता खो बैठते हैं।

विलियम मैकेनली जब अमेरिका के राष्ट्रपति का चुनाव लड़ रहे थे। तब उनका विरोध करने वाले एक अखबार ने चुनाव प्रचार की रिपोर्टिंग के लिए एक पत्रकार को नियुक्त किया था। उस पत्रकार को निर्देश दिया गया था कि वह मैकेनली से संबंधित नकारात्मक समाचार ही तैयार करे। पहला नकारात्मक समाचार उसने छपने के लिए भेज दिया। मैकेनली ने समाचार पढ़ा, मगर शांत रहे। चुनाव यात्रा के दौरान एक दिन मैकेनली ने देखा कि वह पत्रकार कार की सीट पर ठिठुरता हुआ सोया था। मैकेनली उसके पास आए और अपने गर्म कोट से उसे ढक दिया। जब पत्रकार जागा और वास्तविकता से परिचित हुआ तो उसने एक निर्णय लिया और तत्काल अपना त्यागपत्र समाचारपत्र कार्यालय को भेज दिया। इस उदाहरण से पता चलता है कि अपने निंदक के प्रति सौहार्द का बर्ताव कर उसका हृदय परिवर्तन किया जा सकता है।

कुछेक आलोचक ऐसे होते हैं जो हर बात की आलोचना करते हैं। व्यक्तिगत जीवन में दुःखी और तनावग्रस्त रहने वाले ऐसे आलोचक आलोचना को अपना स्वभाव बना लेते हैं। उन्हें लगता है कि इस तरह उन्हें महत्त्वपूर्ण समझ लिया जाएगा और दूसरों की त्रुटियों का प्रचार कर वे अपनी त्रुटियों को छिपा सकेंगे।

जब ऐसा लगे कि कोई प्रतिशोध की भावना से तीखी आलोचना कर रहा है तो सबसे पहले उसकी वैसी भावना के कारण का पता लगाना चाहिए। उसके कारण का समाधान करने से जहाँ आलोचक को शांत किया जा सकता है वहीं अपनी त्रुटि का भी निदान किया जा सकता है।

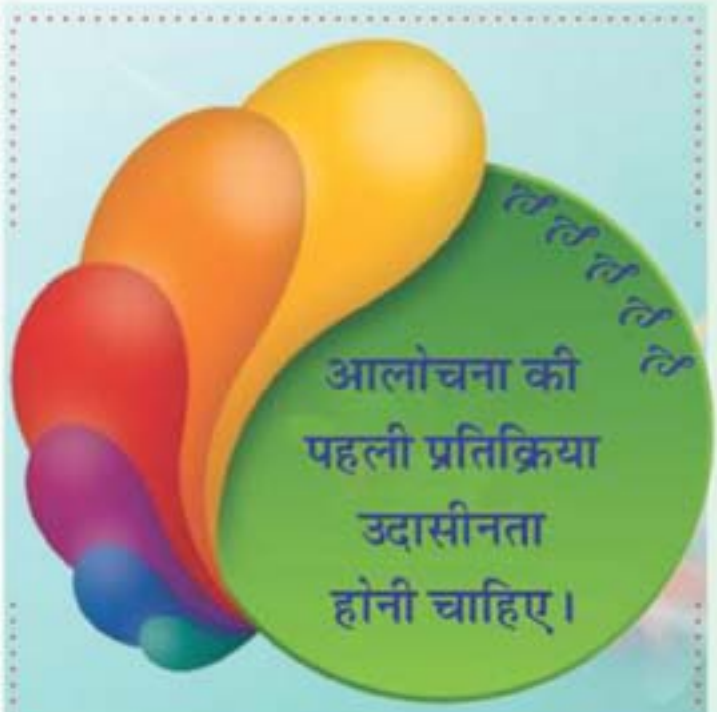

डिजराइली ने कहा था– "सही होने की तुलना में आलोचक बनना आसान है।" एक बात याद रखनी चाहिए कि आलोचकों के विरोध का सामना व्यक्ति को कदम-कदम पर करना पड़ता है। अपने संवेगों पर नियंत्रण करते हुए ऐसी तीखी आलोचनाओं का भी सामना किया जा सकता है और आत्म विश्लेषण की कसौटी पर आलोचना को कसते हुए आलोचक के क्रोध को शांत किया जा सकता है।

भाव परिवर्तन का अभियान

आचार्य तुलसी

प्रेक्षाध्यान का एक प्रयोग है- चैतन्य केन्द्रों का ध्यान। यह शरीर-प्रेक्षा का ही विकसित रूप है। अल्पकालिक शरीर-प्रेक्षा में एक-एक अवयव पर थोड़े समय के लिए ध्यान केन्द्रित होता है, उसमें यह संभव नहीं है। प्रत्येक अवयव पर दीर्घकालिक प्रेक्षा का अभ्यास हो तो ध्यानस्थ व्यक्ति चैतन्य-केन्द्रों तक पहुंच जाता है। वैसे तो शरीर-प्रेक्षा में चैतन्य-केन्द्रों का ध्यान सहज ही हो जाता है, फिर भी विशेष विकास के लिए उनकी जानकारी और उन पर ध्यान का दीर्घकालिक अभ्यास बहुत जरूरी है। चैतन्य-केन्द्र शरीर के महत्त्वपूर्ण भाग हैं, जहां हमारी चेतना घनीभूत होकर रहती है। सामान्यतः पूरे शरीर में चैतन्य होता है। जैन दर्शन के अनुसार आत्मा शरीर-व्यापी है। किंतु शरीर के कण-कण को जागृत कर पाना हर एक व्यक्ति के लिए संभव नहीं है। इसलिए कुछ विशिष्ट केंद्र, जहां से चेतना की रश्मियां सरलता से बाहर आ सकती हैं, जागृत करने के लिए प्रेक्षा का प्रयोग किया जाता है। उन केंद्रों का जितना-जितना जागरण होता है, उतना-उतना अतींद्रिय ज्ञान उपलब्ध होता है। ध्यान का अभ्यास जितना पुष्ट होता है, सुप्त केन्द्रों का जागरण उतनी ही तीव्रता से होने लगता है।

प्रेक्षा के प्रयोग का मुख्य उद्देश्य है- समता का अभ्यास। इसके लिए गहराई में उतरकर देखना जरूरी है। जागने और देखने की चेतना जागृत हो जाए, द्रष्टाभाव विकसित हो जाए, राग और द्वेष की चेतना क्षीण हो जाए तो समता स्वयं घटित हो जाती है। समत्व का विकास होने लगता है तो सारी विषमताएं टूटने लगती हैं, अनियमितता समाप्त हो जाती है और जीवन को नया प्रकाश मिल जाता है। समत्व के विकास में प्रियता और अप्रियता की संवेदना कम होती है, वस्तु की यथार्थता समझ में आ जाती है और आसक्ति का विलय हो जाता है।

मनुष्य की सबसे बड़ी चाह है कि उसे ऐकान्तिक और आत्यन्तिक सुख मिले। यह तब तक नहीं मिल सकता, जब तक उसकी प्रज्ञा समत्व में प्रतिष्ठित नहीं हो जाती। इसके लिए चैतन्य-केन्द्रों के ध्यान का विशेष महत्त्व है। क्योंकि ये चैतन्य-केन्द्र अपरिष्कृत रूप में रहकर विषमता के भाव उत्पन्न करते हैं और जब ये परिष्कृत हो जाते हैं तो समता के भाव उत्पन्न करते हैं। अशुद्ध भावधारा चैतन्य-केन्द्रों की मलिनता का हेतु है और विशुद्ध भावधारा उन्हें निर्मल बनाती है। विशुद्ध भावधारा से चैतन्य-केन्द्रों का जागरण स्वाभाविक है। सहज रूप में ऐसी स्थिति न बन पाए तो चैतन्य-केन्द्रों पर ध्यान करने से, उनकी प्रेक्षा करने से वे जागृत हो सकते हैं। ध्याता की क्षमता के आधार पर केन्द्रों के जागरण में समय और श्रम की तरतमता अवश्य रहती है, फिर भी यह निश्चित है कि इस क्षेत्र में किया गया श्रम व्यर्थ नहीं होता। वह किसी-न-किसी रूप में समत्व के विकास में निमित्त बनता ही है।

है। भगवान् महावीर तो शरीर-प्रेक्षा के प्रयोग करते ही थे। फिर भी किसी ने चैतन्य-केन्द्रों की चर्चा नहीं की। आपकी दृष्टि से चैतन्य-केन्द्र क्या हैं? अतीत में इनकी कोई पहचान थी या नहीं?

चैतन्य-केन्द्र कोई हमारी नयी खोज नहीं है। जो-जो ध्यान की गहराई में पहुंचे हैं, उन्होंने अपने चैतन्य-केन्द्रों को जागृत पाया है। वैसे इन केन्द्रों की संख्या का निर्धारण कर पाना बहुत कठिन है। अनेक चैतन्य-केन्द्र होते हैं। उनमें बहुत कम केन्द्रों का अवबोध और जागरण हो पाता है। चैतन्य-केन्द्र का अर्थ है- शरीर के कुछ हिस्सों को स्फटिक की भांति निर्मल बना लेना। इसका दूसरा नाम है- करण। शरीर को करण बनाने का अर्थ है उससे काम करना। हमारी इन्द्रियों को करण कहते हैं, क्योंकि हम उनके द्वारा बोध करते हैं। आंख से देखते हैं, कान से सुनते हैं, नासिका से सूंघते हैं। ये अंग विशिष्ट काम देते हैं, इसलिए करण हैं। शरीर का भी एक नाम करण है। इसका वाच्यार्थ यह हुआ कि हम समूचे शरीर को करण बना सकते हैं। करण बनने के बाद शरीर के किसी भी हिस्से से देखा जा सकता है, सुना जा सकता है, चखा जा सकता है। आंखों से हम देखते हैं, बोल भी सकते हैं, सुन भी सकते हैं। जैन आगमों में जो संभिन्न स्रोतोपलब्धि की चर्चा है, वह यही तो है। जब पूरा शरीर करण बन सकता है तो शरीर के हर हिस्से से बोलना और देखना संभव हो जाता है। इस तथ्य को दीपक के रूपक से समझा जा सकता है।

दीपक को किसी सघन ढक्कन से ढक दिया जाए तो उसके प्रकाश की एक भी किरण बाहर नहीं जा सकती। उसी को यदि जालीदार ढक्कन से ढका जाता है तो प्रकाश छन-छनकर बाहर आ जाता है और ढक्कन को सर्वथा हटा दिया जाए तो पूरा प्रकाश फैल जाता है। इसी प्रकार आवृत ज्ञानचेतना प्रकाश के मध्य अवरोध बन जाती है। क्योंकि आवरण सघन है। जालीदार ढक्कन से प्रकाश-कण बाहर आते हैं। चैतन्य-केन्द्र जालीदार ढक्कन के समान हैं। इनसे छन-छनकर ज्ञान-रश्मियां बाहर फैलती हैं। यह एक प्रकार का अतींद्रिय ज्ञान है। ढक्कन को हटाने का मतलब है समूचे शरीर को स्फटिक की भांति निर्मल बना लेना। इस स्थिति में आवरण का सर्वथा विलय हो जाता है, पूरे शरीर से ज्ञान-रश्मियां बाहर फैल जाती हैं। पर इसके लिए दीर्घकालिक अभ्यास और सघन श्रद्धा की अपेक्षा रहती है। जब तक पूरा शरीर करण नहीं बनता है, तब तक सर्वावधि अवधिज्ञान या केवलज्ञान उपलब्ध नहीं हो सकता।

प्राचीन काल में चैतन्य- केन्द्रों की कोई पहचान नहीं थी, यह बात नहीं है। शरीर-शास्त्रियों ने शरीर में जो विशेष ग्रन्थियां मानी हैं, वे चैतन्य-केन्द्र ही हैं। तंत्र-शास्त्रियों और हठयोग में जिनको चक्र कहा जाता है, वे चैतन्य-केन्द्र ही हैं। आज की भाषा में शरीर में जहां-जहां विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र (इलेक्ट्रोमैग्नेटिक फील्ड) हैं, वहां-वहां चैतन्य-केन्द्र हैं। आधुनिक परिवेश में इनकी इस रूप में प्रस्तुति ध्यान की प्रक्रिया को सहज और सरल बनाने में निमित्त बनेगी, ऐसी मेरी मान्यता है।

सामान्यतः चैतन्य-केन्द्र दो अवस्था में रहते हैं- निष्क्रिय या सुप्त और सक्रिय या जागृत। किसी मनुष्य का कोई चैतन्य-केन्द्र सहज रूप में सक्रिय हो जाता है, किन्तु सबके सभी केन्द्र सक्रिय नहीं रहते। अभ्यास के द्वारा एक या अनेक केन्द्रों को सक्रिय या जागृत किया जा सकता है। चैतन्य-केन्द्र इस नश्वर शरीर में एक प्रकार के गुप्त खजाने हैं। प्रेक्षाध्यान का अभियान इनको जागृत करने के लिए है। श्वास-प्रेक्षा, शरीर-प्रेक्षा, अन्तर्यात्रा, कायोत्सर्ग- ये सभी उस अभियान के अंग हैं, चैतन्य-केन्द्रों का नियंत्रण हुए बिना हमारे भावों का नियंत्रण नहीं हो सकता। जब तक चैतन्य-केन्द्र नहीं बदलते हैं, तब तक भाव-परिवर्तन की भी कोई संभावना नहीं है। भाव, स्वभाव या आदत बदले बिना व्यक्तित्व में बदलाव नहीं आ सकता, आध्यात्मिक विकास नहीं हो सकता। ऊर्ध्वारोहण भी नहीं हो सकता। इस दृष्टि से यह एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। जिस साधक ने घनीभूत आस्था के साथ यह प्रयोग किया है, वह अपने लक्ष्य में सफल हुआ है।

कायिक प्रेक्षाध्यान है, सहज सरल सदुपाय।
केन्द्र-जागरण मार्ग में, इसकी अनुपम दाय।।

प्रेक्षा का उद्देश्य है, समता का अभ्यास।
पल-पल नियमितता सधे, आए नया प्रकाश।।

केन्द्र चेतना के सभी, हैं तन में अविकार।
वैज्ञानिक की ग्रन्थियां, चक्रयोग के द्वार।।

ये प्रसुप्त जब तक रहें, प्रज्ञा होती सुप्त।
नश्वर तन में समझ लो, ये हैं निधियां गुप्त।।

उनकी जागृति हेतु है, यह सारा अभियान।
ऊर्ध्वारोहण के लिए, साधक करे प्रयाण।।

> आचार्य महाप्रज्ञ स्वनामधन्य थे। आपकी प्रज्ञा का कोई सानी नहीं मिलता। आपके प्रवचनों में, सामान्य वार्तालापों में जो अमृत निःसृत होकर सामने आया उसके सार को प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास इस स्तम्भ में है। -सम्पादक

मुलेठी

मुलेठी! तुम्हारे नाम में ही मधुरता व्यक्त होती है। बहुत लोग नाम से विशिष्ट होते हैं, किन्तु पूरी समीक्षा करने पर वे साधारण प्रतीत होते हैं। तुम अनेक गुणों से युक्त हो। तुम्हारा प्रयोग आंखों के लिए हितकर है। कण्ठ को भी तुम मधुर करती हो। कफ के रोग को भी दूर करती हो। इन गुणों की समीक्षा कर आयुर्वेद के आचार्यों ने तुम्हारी गणना 'जीवनीय' गण में की है।

प्रथम परिचय में नाम की पूजा होती है। चिर परिचय होने पर गुण ही पूजा के स्थान बनते हैं, नाम नहीं।

एरण्ड

एरण्ड! तुम बहुत लम्बे नहीं हो, कृशकाय हो, वायु के झोंकों से प्रकम्पित होते हो। साहित्यमर्मज्ञों ने वृक्षसमूह में मुश्किल से तुम्हारी गणना की है। उन्होंने कहा- 'वृक्षविहीन देश में एरण्ड भी वृक्ष की गिनती में आ जाता है।'

आश्चर्य! (मनुष्य ने) तुम्हारा शरीर देखा, किन्तु तुम्हारे गुण नहीं देखे। वातव्याधि के प्रतिकार में तुम्हारा तैल बहुत उपयोगी है। कोष्ठबद्धता से पीड़ित लोग मृदु रेचन के लिए तुम्हारे तैल का प्रयोग करते हैं।

शरीर का दर्शन सुलभ है। दुर्लभ है गुणों का दर्शन।

> मुनि राकेश कुमार अनुभव-सिद्ध लेखनी के धनी हैं। उनके संस्कृत श्लोकों को हिन्दी और अंग्रेजी भाषा में अनुवादित कर प्रस्तुत किये जा रहे हैं। यह उपक्रम सुधि पाठकों को जीवन-पथ में आशातीत आलोक का सूत्रपात करेगा, ऐसा विश्वास है। -सम्पादक

मुनि राकेशकुमार

साफल्यमाप्याति न हर्षितव्यं, श्रेयस्करं सन्तुलनं सदास्ति।
लक्ष्यस्यसिद्धिर्विहितेऽपि यत्ने, न स्याद्, विषादो न तथापि कार्यः।।

सफलता प्राप्त कर अधिक हर्ष नहीं करना चाहिए। मानसिक संतुलन सदा कल्याणकारी है। इसी प्रकार प्रयत्न करने पर भी यदि लक्ष्य की सिद्धि नहीं होती है तो विषाद का अनुभव नहीं करना चाहिए।

One should not be overwhelmed with joy on being successful. Mental balance is always propitious. Similarly one should not feel dejected after being unsuccessful in achieving the goal even after best efforts.

कर्त्तव्यपूर्तिर्भुवने सुधास्ति, तस्यामवर्ण्यं मधुरत्वमिष्टम्।
ये श्रद्धया तां सततं पिबन्ति, तृप्तिं लभन्तेऽनुपमां जनास्ते।।

संसार में कर्त्तव्य-पूर्ति अमृत है। उसमें अवर्णनीय और सुखद मधुरता है। जो श्रद्धा से उसे पीते हैं, वे अनुपम तृप्ति का अनुभव करते हैं।

In this world dutifulness is the nectar having sweetness beyond description. Those who taste it with faith, experience contentment par-excellence.

कंजूस को प्रतिबोध

गांव में एक महात्माजी आए। लोगों से गांव की स्थिति की जानकारी ली। लोगों ने जनसंख्या, चिकित्सा, शिक्षा आदि की स्थिति बताते हुए कहा- 'महाराज! हमारे गांव में कुछ लोग सहयोग करें तो गांव का अच्छा विकास हो सकता है। परन्तु वे कंजूस लोग कठिन समय में भी हमारी सहायता नहीं करते। हमारी कमाई ब्याज के रूप में उन्हीं के पास जाती है। आप कुछ प्रेरणा दें तो काम हो सकता है।'

महात्माजी कंजूस सेठ के घर गए और कहा- 'दीनदयाल! हम एक उद्देश्य से तुम्हारे पास आए हैं। मेरे पास एक सूई है। उसे तुम तिजारी में रख लो। देखो, तुम अब जीवन के उत्तरार्द्ध में हो और मैं भी। जीवन का ठिकाना नहीं है। तुम मरकर बड़े लावलश्कर और धनमाल के साथ परलोक जाओ तब अपनी तिजोरी में मेरी यह सूई भी लेते जाना। मैं तुमसे ले लूंगा।'

सेठ हंसते हुए बोला- 'आप महात्मा होकर भी कैसी बात करते हैं? आप तो सबको उपदेश देते हैं कि मरने के बाद तिनका भी कोई अपने साथ नहीं ले जाता। कफन भी श्मशान की चिता के साथ जल जाता है।'

महात्मा- 'यदि कोई कुछ नहीं ले जाता है तो तुमने करोड़ों रुपयों का संग्रह क्यों कर रखा है?'

सेठ को करंट-सा लगा। जीवन में पहली बार कुछ सोचने को मजबूर हुआ। एक क्षण में ही चिंतन की धारा बदल गई।

एक अपराध : तीन दण्ड

राजा के सामने तीन अपराधियों को प्रस्तुत किया गया। राजा ने तीनों की आकृति को बड़े ध्यान से देखा और दण्ड सुना दिया। एक को मात्र यह कहकर कि 'तुम्हारे जैसे आदमी के लिए ऐसा उचित नहीं था' छोड़ दिया। दूसरे को एक हजार रुपये का अर्थदण्ड दिया और तीसरे को भारी दण्ड दिया। तीनों चले गए।

कुछ सभासदों ने कहा- 'राजन्! धृष्टता क्षमा करें। आपका न्याय हमारी समझ में नहीं आया।' राजा ने जिज्ञासा की अनुमति प्रदान की तो वे बोले- 'अपराधी तीन थे और तीनों पर एक ही तरह का जुर्म था। तीनों को तीन तरह के दण्ड क्यों दिए गए?'

राजा- 'उचित समय पर आपकी शंका का समाधान हो जाएगा।'

दूसरे दिन संवाद मिला- जिसे राजा ने यह कहकर छोड़ दिया था कि 'ऐसा काम तुमने क्यों किया?' उस आदमी ने आत्महत्या कर ली। जिस व्यक्ति को अर्थदण्ड देकर छोड़ा था, वह नगर छोड़कर चला गया। किन्तु जिसे भारी दण्ड दिया गया था, वह मजे से घूम रहा है। उसके चेहरे पर पश्चाताप या ग्लानि के कोई भाव ही नहीं थे।

राज्यसभा जुड़ी, राजा ने उन सभासदों की ओर उन्मुख होकर कहा- 'आप लोगों ने मेरी न्याय व्यवस्था पर आशंका व्यक्त की थी। क्या अब भी आप लोगों को समझाने की जरूरत है?'

सभासद- 'नहीं महाराज! हम समझ गए।'

राजा- 'दण्ड भी अपराधी की मनःस्थिति के अनुसार होना चाहिए। जिस व्यक्ति में लज्जा है, आत्मसम्मान है, उस व्यक्ति को कड़े दण्ड की जरूरत नहीं। किन्तु जहां न लज्जा है, न पश्चाताप है और न संकोच है, वहां कड़ी सजा देना जरूरी है।'

यह विवेक और दृष्टि संपन्नता का निदर्शन है।

स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियां क्यों विश्वसनीय ?

❁ डॉ. चंचलमल चोरड़िया

क्या स्वास्थ्य हेतु समान मापदण्डों का निर्धारण संभव है ?

दुनिया में कोई भी दो व्यक्ति सम्पूर्ण रूप से एक जैसे नहीं हो सकते। उनके जीवन का लक्ष्य, प्राथमिकताएं, खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार, आवास एवं व्यवसाय का वातावरण तथा परिस्थितियां एक जैसी नहीं होती, तो बाह्य रूप से कुछ लक्षणों में समानता होने के बावजूद किसी एक रोग के नाम से रोगी का परिचय करना कहां तक सही होगा? पांचों इन्द्रियों के विषय-- जैसे देखना, सुनना, बोलना, गंध लेना, स्पर्श करना, समझना आदि एक जैसी परिस्थितियों का अलग-अलग प्रभाव क्यों पड़ता है? कहने का आशय यह है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वास्थ्य के अलग-अलग स्तर पर जीता है।

रोग के निदान हेतु जो रोगी से पूछा जाता है और रोगी अभिव्यक्त करता है अथवा जो यंत्रों एवं पेथालोजिकल रिपोर्ट के परीक्षण से प्राप्त होता है वह सत्यांश ही होता है। अतः स्वस्थ रहने हेतु व्यक्ति को निदान और उपचार की यथार्थता के प्रति स्वयं की सजगता और विवेक आवश्यक होता है।

स्वावलम्बी चिकित्सा के मूलभूत सिद्धान्त

प्रभावशाली स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियां व्यक्ति को स्वस्थ रखने तथा रोग का उपचार करते समय निम्न तथ्यों की उपेक्षा नहीं करती--

१. पूर्ण शरीर, मन और आत्मा को एक इकाई मानकर निदान और उपचार करती है, जिससे न केवल शरीर ही रोग मुक्त होता है अपितु मन सजग और आत्मा विकार मुक्त होती है।
२. पूर्ण शरीर का निदान एवं उपचार करने से अल्पव्यय, सहयोगी रोगों की उपेक्षा नहीं होती।
३. शरीर में स्वयं को स्वस्थ रखने की क्षमता होती है। भोजन, पानी, हवा, सूर्य के प्रकाश के सम्यक् उपयोग तथा आवश्यक श्रम एवं विश्राम द्वारा शरीर की क्षमताओं का पूर्ण उपयोग लेती है।
४. उपचार पूर्णतः सहज, सरल, सस्ता, स्थायी, अहिंसक, दुष्प्रभावों से रहित एवं प्रभावशाली होने के साथ-साथ रोगी की सजगता होने से अंधेरे में नहीं होता।
५. शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता कम न हो, अपितु उसमें वृद्धि हो, इस हेतु प्राथमिकता और सजगता होने से वायरस और बैक्टीरिया से व्यक्ति प्रभावित नहीं होता।

पशु जगत का उपचार कौन करता है ?

जब से मानव सभ्यता का विकास हुआ, तभी से स्वास्थ्य वैज्ञानिक, चिकित्सक इस प्रयास में व्यस्त हैं कि मानव रोग मुक्त जीवन कैसे जी सके? यथार्थता यह है कि इतनी प्रगति के बावजूद भी आज रोग और रोगियों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है। दुनिया में चेतनाशील प्राणियों में मानव का प्रतिशत तो एक प्रतिशत से भी कम है, बाकी ९९ प्रतिशत जीव अनादिकाल से सहज जीवन जी रहे हैं, जिन्हें किसी भी प्रकार की चिकित्सा पद्धति का न तो कोई ज्ञान होता है और न अनुभवी चिकित्सकों का सान्निध्य ही मिलता है। क्या वे रोगी नहीं होते? वे पुनः स्वस्थ कैसे होते हैं? दूसरी तरफ स्वच्छ वातावरण में रहने वाले, प्लास्टिक आहार का सेवन करने वाले, शुद्ध निर्मल मिनरल वाटर पीने वाले भी रोगी हो जाते हैं, आखिर क्यों? इस पर बिना किसी पूर्वाग्रह के स्वतंत्र एवं निष्पक्ष सम्यक् चिन्तन आवश्यक है।

मानव शरीर में अच्छा तालमेल

मानव शरीर दुनिया की सर्वश्रेष्ठ मशीन है जो पांच इन्द्रियों और मन जैसी अमूल्य सम्पदाओं से न केवल परिपूर्ण ही होता है अपितु उसके सारे अंग उपांग पूर्ण तालमेल एवं आपसी सहयोग व समन्वय से अपना-अपना कार्य करते हैं। यदि शरीर के किसी भी भाग में कोई तीक्ष्ण कांटा, सूई अथवा पिन चुभ जाये तो उस समय न तो आंख को अच्छे दृश्य देखना अच्छा लगता है और न कानों को मनपसन्द गीत सुनना। यहां तक कि दुनिया भर में चक्कर लगाने वाला हमारा चंचल मन क्षणमात्र के लिए अपना ध्यान वहां केन्द्रित कर देता है। जिस शरीर में इतना तालमेल और अनुशासन हो, क्या उस शरीर में कोई अकेला नामधारी रोग उत्पन्न हो सकता है?

शरीर में स्वयं की आवश्यकताओं को पूर्ण करने की क्षमता होती है

हमें चिन्तन करना होगा कि जो शरीर कोशिकाओं, रक्त, मांस, मज्जा, हड्डियां, चर्बी, वीर्य आदि अवयवों का निर्माण स्वयं करता है, जिसे आधुनिक विकसित स्वास्थ्य विज्ञान पूरी कोशिश के बावजूद अभी तक नहीं बना सका, ऐसे स्वचालित, स्वनिर्मित, स्वनियंत्रित शरीर में स्वयं के रोग को दूर करने की क्षमता न हो, यह कैसे संभव है? अनुभवी चिकित्सक एवं अच्छी से अच्छी दवा शरीर को अपना उपचार स्वयं करने की प्राकृतिक विधि में सहायक मात्र होते हैं। शरीर के सहयोग के बिना सारे उपचार निष्क्रिय हो जाते हैं।

दुष्प्रभावों की उपेक्षा हानिकारक

अधिकांश व्यक्ति रोग होने में स्वयं की गलती को स्वीकार नहीं करते। इसी कारण रोग को समझे बिना, निदान के बारे में अपनी शंकाओं का समाधान प्राप्त किए बिना, डॉक्टरों के पास पड़ने वाली भीड़ के अन्धानुकरण के कारण, चिकित्सा से भविष्य में पड़ने वाले दुष्प्रभावों की उपेक्षा करते हुए अपने आपको डॉक्टरों की प्रयोगशाला बनाते प्रायः संकोच नहीं करते। वे इस बात का चिन्तन तक नहीं करते कि

दवाओं के अधिक अथवा अनावश्यक सेवन से शरीर की रोग प्रतिरोधक शक्ति क्षीण होने लगती है।

चिकित्सा में हिंसा को प्रोत्साहन अनुचित

आत्मा को अशुभकर्मों से भारी करने में सबसे ज्यादा कारण हिंसा, क्रूरता, निर्दयता का आचरण होता है। दुनिया में कोई भी जीव मरना नहीं चाहता। भले ही उसे न चाहते हुए भी मरना क्यों न पड़े। 'जीओ और जीने दो' पर आधारित जीवनचर्या ही मानवता का प्रतीक होती है। अपने स्वार्थ के लिए अन्य जीवों को कष्ट पहुंचाना पाशविकता का लक्षण है। हमें तो पिन अथवा सूई की चुभन भी सहन न हो, परन्तु अज्ञानवश पौष्टिकता एवं स्वाद, शिक्षा, दवाओं के निर्माण एवं परीक्षण अथवा उपचार आदि के लिए अन्य जीवों के साथ क्रूरता अथवा उनका वध करना या उन्हें परेशान और पीड़ित करना, स्वयं के लिए दुःखों, कष्टों, रोगों को आमंत्रण देना है। उन मूक, बेजुबान, असहाय जीवों की बद्दुआएं, हृदय से निकली चिंगारियां उनको पीड़ित करने में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग करने वालों को कभी शान्त, सुखी एवं स्वस्थ नहीं रहने देगी। भले ही पुण्य के प्रभाव से स्वार्थी मानव को उसका तात्कालिक दुष्फल न भी मिले।

जब पूज्य पुरुषों का आशीर्वाद हमें शान्ति पहुंचा सकता है तो दुःखी प्राणी की आहें अपना प्रभाव क्यों नहीं दिखाएंगी, चिन्तन का प्रश्न है? क्या हिंसा द्वारा निर्मित और क्रूरता द्वारा परीक्षण की गई दवाओं द्वारा उपचार करवाने वालों को अशुभ कर्मों का बन्ध नहीं होता है? प्रकृति का दण्ड देने का विधान पूर्ण न्याय पर आधारित होता है। वहां देर भले ही हो सकती है, अंधेर नहीं हो सकती।

अतः जहां कोई विकल्प न हो और रोग सहनशक्ति के बाहर हो, उसी अवस्था में लाचारीवश ही ऐसा उपचार लेकर प्रायश्चित लेना चाहिए। अतः हिंसा को प्रोत्साहन देकर आत्मा को विकारी बनाने वाली चिकित्सा पद्धतियां पूर्ण रूप से प्रभावशाली कदापि नहीं हो सकती।

स्वावलम्बी चिकित्सा को प्रभावशाली बनाने हेतु रोगी से अपेक्षाएं

स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धति से उपचार करते समय रोगी को अग्रलिखित बातों का विशेष ध्यान रखना आवश्यक होता है—

१. रोग के कारणों को जानने एवं समझने की जिज्ञासा, परामर्श देने वाले चिकित्सक से निदान और उपचार के बारे में शंकाओं का निराकरण करना तथा स्वयं की भूमिका का सम्यक् चिन्तन कर उसके अनुरूप पुरुषार्थ करना।
२. रोगी की स्वस्थ होने की तीव्र उत्कण्ठा, दृढ़ इच्छाशक्ति, सजगता, निश्चय, मनोबल, सम्यक् श्रद्धा, तर्कपूर्ण चिन्तन तथा दुष्प्रभावों के प्रति उपेक्षावृत्ति न होना।
३. शरीर, मन एवं आत्मा की क्षमताओं का सम्यक् चिन्तन एवं प्राथमिकता के अनुसार उपयोग करना अर्थात् प्राण एवं प्राण ऊर्जा के मूल स्रोत एषणाओं का दुरुपयोग न करना।
४. आत्मशक्ति बढ़ाने हेतु नियमित प्रार्थना, स्वाध्याय, ध्यान, कायोत्सर्ग एवं तप करना। प्राण और एषणाओं के संयम का अभ्यास करना।
५. मन, वचन और काया का यथासंभव संयम रखना।
६. प्राणी मात्र के प्रति दया, करुणा, मैत्री एवं प्रेम का भाव रखना तथा प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से उन पर क्रूरता, अत्याचार, निर्दयता, हिंसा आदि का व्यवहार न तो स्वयं करना और न करने वालों को सहयोग देना।
७. उपचार में नियमितता, निरन्तरता, समयबद्धता, एकाग्रता एवं स्वयं की भागीदारी की उपेक्षा नहीं करना।

रोगी जितना-जितना उपरोक्त नियमों का पालन करेगा, उतना जल्दी ही वह रोग मुक्त हो जायेगा। यदि वह स्वस्थ है तो रोग उसको परेशान नहीं करेगा। उपरोक्त सारी बातें व्यक्ति के स्वयं के नियंत्रण में होती हैं।

स्वावलम्बी चिकित्सा क्यों प्रभावशाली ?

स्वावलम्बी अहिंसात्मक चिकित्सा पद्धतियां रोग के मूल कारणों को दूर करती हैं। शरीर, मन और आत्मा में तालमेल एवं सन्तुलन स्थापित करती हैं। शरीर की क्षमताओं और उसके अनुरूप आवश्यकताओं में सन्तुलन रखती हैं। स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियां व्यक्ति में धैर्य, सहनशीलता, सजगता, विवेक, स्वदोष दृष्टि एवं आत्म विश्वास विकसित करती हैं।

व्यक्ति रोग तो स्वयं पैदा करता है, परन्तु दवा और डॉक्टर से ठीक करवाना चाहता है। क्या हमारा श्वास अन्य व्यक्ति ले सकता है? क्या हमारा खाया हुआ भोजन दूसरा व्यक्ति पाचन कर सकता है? प्रकृति का सनातन सिद्धान्त है कि जहां समस्या होती है उसका समाधान उसी स्थान पर अवश्य होता है। अतः जो रोग शरीर में उत्पन्न होते हैं, उनका उपचार शरीर में अवश्य होना चाहिए। शरीर का विवेकपूर्ण एवं सजगता के साथ उपयोग करने की विधि स्वावलम्बी चिकित्सा में आधारशिला होती है।

मानव की क्षमता, समझ और विवेक जागृत करना उसका उद्देश्य होता है। स्वावलम्बी चिकित्सा में निदान और उपचार में रोगी की भागीदारी एवं सजगता प्रमुख होती है। अतः रोगी उपचार से पड़ने वाले सूक्ष्मतम प्रभावों के प्रति अधिक सजग रहता है, जिससे दुष्प्रभावों की संभावना प्रायः नहीं रहती। ये उपचार बाल-वृद्ध, शिक्षित-अशिक्षित, गरीब-अमीर, शरीर विज्ञान की विस्तृत जानकारी न रखने वाला साधारण व्यक्ति भी आत्मविश्वास से चिकित्सक के परामर्श से स्वयं कर सकता है।

स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियां हिंसा पर नहीं— अहिंसा पर, विषमता पर नहीं— समता पर, साधनों पर नहीं— साधना पर, परावलम्बन पर नहीं— स्वावलम्बन पर, क्षणिक राहत पर नहीं— अपितु अन्तिम प्रभावशाली स्थायी परिणामों पर आधारित होती हैं। रोग के लक्षणों की अपेक्षा रोग के मूल कारणों को दूर करती है। शरीर, मन और आत्मा में संतुलन और तालमेल स्थापित करती हैं। जो जितना महत्त्वपूर्ण होता है, उसको उसकी क्षमता के अनुरूप महत्व एवं प्राथमिकता देती हैं। स्वस्थ जीवन जीने हेतु जो अनावश्यक, अनुपयोगी प्रवृत्तियां हैं, उन पर नियंत्रण रखने हेतु सचेत करती हैं। इस प्रकार आधि, व्याधि और उपाधि के संतुलन से समाधि, शांति और स्वस्थता शीघ्र प्राप्त होती है।

अतः स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियां अन्य चिकित्सा पद्धतियों से अधिक प्रभावशाली होती हैं। साधन, साध्य एवं साधनी तीनों पवित्र होते हैं। उपचार से पूर्व रोगी उपचार से पड़ने वाले दुष्प्रभावों के प्रति पूर्ण सावधान रहता है और उसका उपचार अंधेरे में न होने से वह गलत एवं हिंसक दवाओं के सेवन से अपने आपको सहज बचा लेता है। अतः जो चिकित्सा पद्धतियां जितनी अधिक स्वावलम्बी होती हैं, रोगी की उसमें उतनी ही अधिक सजगता, भागीदारी होने से वे पद्धतियां उतनी ही अधिक प्रभावशाली होती हैं।

सफलता में बाधक नशा और गुस्सा

साध्वी जगवत्सला

विकास में बहुत बड़ा रोड़ा है गुस्सा और नशा। नशा व गुस्सा मात्र वर्तमान की ही समस्या नहीं बल्कि अतीत काल से चली आ रही है। फर्क इतना है कि उस समय नशा केवल पुरुष ही किया करते थे, आज स्त्रियाँ भी करती हैं। उस समय नशे का रूप भिन्न था और आज भिन्न है। तब के वणिक् लोगों में चिलम, हुक्का, भांग आदि का प्रचलन था, जबकि आज धूम्रपान के साथ मद्यपान भी करते हैं। आज नशे का रूप बदल गया। सुरापान, खैनी, जर्दा, सिगरेट व विभिन्न प्रकार के नशीले पाउचों का प्रयोग परिवारों को रोशन किए हुए है। वैभव व विलासिता में पलने वाले इसी में अपनी शान समझते हैं। व्यसन आज का फैशन बन गया है। फैशन परस्ती में जीने की ख्वाहिशें, व्यसन की फरमाईशें करती हैं। पर नहीं पता राजाओं का राज, सेठों की सेठाई, ठाकुरों की ठुकराई के खत्म होने का इतिहास।

मॉडर्न बनने की हुड़दंग दिल में मची है। इसी होड़ाहौड़ में अपनी शानो-शौकत का अनिवार्य, अपरिहार्य अंग मान स्त्री और पुरुष दोनों इसे स्वीकार करते हैं। दोनों में गुस्सा है और दोनों में नशे की लत किसी न किसी रूप में देखने को मिल सकती है। गुस्सा और नशा दोनों ही व्यक्ति की छवि और शक्ति को धूमिल करते हैं। किसी भी एक प्रकार का नशा व्यक्ति को नशेड़ी बना देता है, तो गुस्सा आने पर गुस्सैल, चंचल व राक्षस बना देता है।

ओसामा बिन लादेन ने जो कृत्य किया। अमेरिका में वर्ल्ड ट्रेड सेंटर को ध्वस्त करवाया। वापिस अमेरिका ने जो युद्ध किए, यह दुष्परिणाम किसका है? गुस्से का ही तो। यह विदित है कि अमेरिका से जिस क्रिया की प्रतिक्रिया प्रारंभ होती है, उसका प्रभाव पूरे विश्व को प्रभावित करता है। सबको अपने शिकंजे में ले लेता है। फिर चाहे किसी भी बात का अथवा आयाम का उद्घाटन हो। आज वेलेंटाइन डे, हैप्पी बर्थ डे, सिल्वर-जुबली, गोल्डन जुबली अथवा किसी भी प्रकार के अन्य उत्सव हों, सबमें पश्चिमी संस्कृति का ही बोलबाला है। आज का रहन-सहन तदनुरूप है, न कि भारतीय-संस्कृति के अनुरूप। फिर नशा-गुस्सा भी वर्तमान की जीवन शैली, जलवायु में मिले हुए हैं। सबकी उमंग में, तरंग में, जीने के रंग-ढंग में बसे हुए हैं। इसलिए कहा जा सकता है कि अगर अमेरिका शांत रहता तो अफगानिस्तान ईराक तबाह नहीं होता और निकट भविष्य में यह आशा की जा सकती है कि उसकी शांति पूरे विश्व में शांति स्थापित करने में योगभूत बनेगी। इसलिए अमरीका अमन आनन्द का वातावरण निर्मित करने में मददगार बने। पर मरने मारने की भावना अथवा प्रतिक्रिया की भावना रखने वाला न बने।

हम अतीत के इतिहास का अवलोकन करेंगे तो पाएँगे रावण, कंस, दुर्योधन, गोशालक, तैमूरलंग, चंगेजखां से क्रोधावतारी भी इस धरती पर अवतरित हुए हैं तो राम, कृष्ण, युधिष्ठिर, महावीर, बुद्ध, गाँधी से क्षमा अवतारी भी हुए हैं। गुस्सा व नशा दोनों ही एक समानरेखा पर चलते हैं, जिसका फलित है–

- गुस्सा और नशा करने वालों की स्मरण शक्ति कमजोर हो

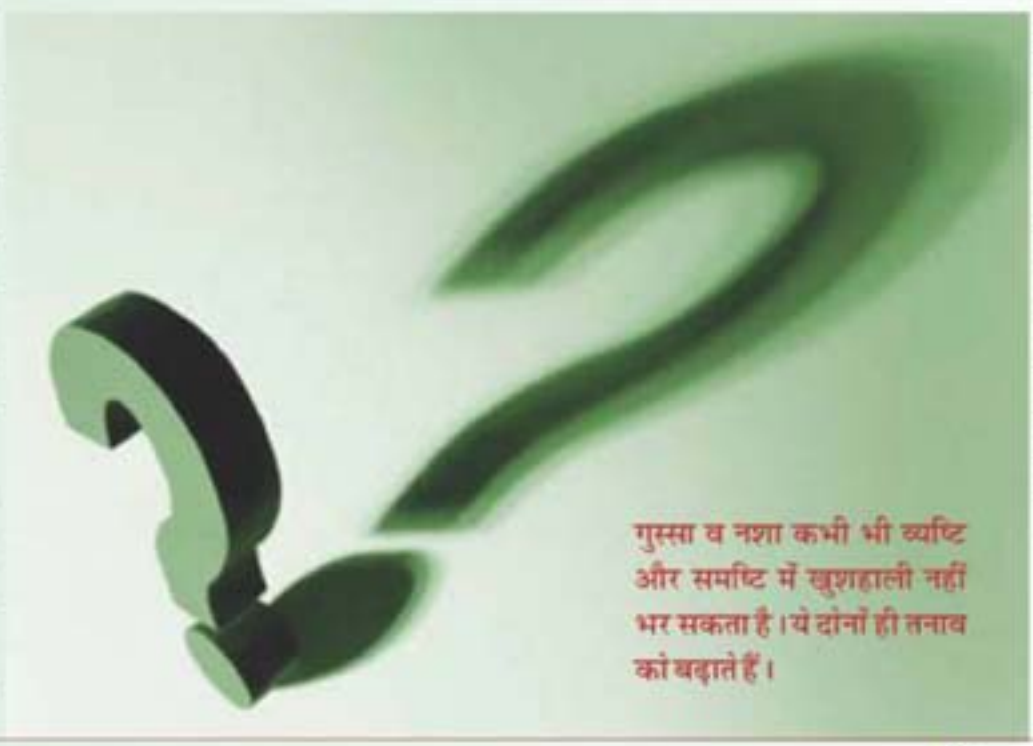

गुस्सा व नशा कभी भी व्यष्टि और समष्टि में खुशहाली नहीं भर सकता है। ये दोनों ही तनाव को बढ़ाते हैं।

जाती है। किसी भी कार्य में उसकी तन्मयता नहीं रहती और उसका अमृतमय भोजन भी विष बन जाता है।

- गुस्सा व नशा करने वाला संबंधों में दरार डाल देता है। उसके साथ रहना कोई भी नहीं चाहता। और तो और, जीवन साथी का जीना भी दुभर हो जाता है। समाधि, शांति, सहृदयता उस व्यक्ति से कोसों दूर चली जाती है। फूलों की सुखशय्या भी शूलों की दुःखशय्या का अहसास कराती है। परिवार का हर सदस्य उससे परेशान हो जाता है। यहाँ तक कि स्वयं उसकी संगिनी भी उससे किनारा करने को तत्पर होकर तलाकनामा कर लेती है।
- गुस्सा करने वाला जहाँ आत्महत्या, परहत्या करने पर तुरंत उतारू हो जाता है। वहीं नशा करने वाला शनैः शनैः बीमारी के आगोश में आकर मृत्यु का शिकार हो जाता है। पास रहने वालों को भी निकोटिन जैसे विष के विषपान से एक न एक दिन मृत्यु शय्या में सोने को मजबूर कर देता है।
- गुस्सा और नशा करने वाला स्थान-स्थान पर ठोकरें खाता है। अनादर अपमान का पात्र बनता है और अपनी इमेज को भी बिगाड़ता है।
- नशे और गुस्से से कैरियर भी प्रभावित होता है।

एक सीनियर ऑफिसर अपने मातहत पर गुस्सा करता है। जांच में उसकी पुष्टि होने पर उसे निलंबित होना पड़ता है। कलेक्टर को लाइन हाजिर होना पड़ता है। नशे में व्यक्ति बेबसी से अपना काम सम्यक् तरह से संपादित नहीं करता है। इस तरह थोड़ा-सा नशा भी कितना खतरनाक होता है। नशा, गुस्सा तो उसके अपने कैरियर को ही रौंद डालता है।

- गुस्सा अपने से कमजोर पर आता है और नशा भी कमजोर व्यक्ति ही करता है। गुस्सा व नशा कभी भी व्यष्टि और समष्टि में खुशहाली नहीं भर सकता है। कोई अमन चैन से जी नहीं सकता। दोनों ही तनाव को बढ़ाते हैं। तनाव से डिप्रेशन की स्थिति बन जाती है। चुस्ती, तंदुरुस्ती सब कुछ स्वाहा हो जाती है। इज्जत मिट्टी में मिल जाती है। तमाशबीन लोग तमाशा देखते हैं। 'घर हाण, लोकां हांसी' हो जाती है और टेंशन-फ्री माइंड यानि दिमाग की तनाव से मुक्ति तो नहीं हो सकती, बल्कि दिमाग में फ्री में ही तनाव पैदा हो जाता है। जिससे जन्म और जीवन दोनों ही भारभूत बन जाते हैं।

जैसे एक के साथ दूसरी चीज फ्री मिलती है वैसे ही एक तनाव, दूसरे तनाव की सौगात फ्री में ही दे जाता है। और एक रोग कई रोगों को। गुस्सा और नशा दोनों कैरियर के शत्रु हैं। अतः इन शत्रुओं को जीतकर ही हम कैरियर में कामयाबी हासिल कर सकते हैं। क्योंकि–

कुछ पाने की है अगर चाह, तो कुछ हस्ती बनाओ।
गुण का पैमाना यह महान्, नशा व गुस्सामुक्त जीवन बनाओ॥

हमारा लक्ष्य बने कि–

मरने के बाद भी कोई निशानी रह जाए।
नक्शे पे कदम कोई कहानी कह जाए।।

गुस्सा व नशा करने वाला संबंधों में दरार डाल देता है। उसके साथ रहना कोई भी नहीं चाहता। और तो और, जीवन साथी का जीना भी दुभर हो जाता है। समाधि, शांति, सहृदयता उस व्यक्ति से कोसों दूर चली जाती है। फूलों की सुखशय्या भी शूलों की दुःखशय्या का अहसास कराती है। परिवार का हर सदस्य उससे परेशान हो जाता है। यहाँ तक कि स्वयं उसकी संगिनी भी उससे किनारा करने को तत्पर होकर तलाकनामा कर लेती है।

बस, इसी ख्वाब में खोए ही न रहें, बल्कि कामयाबी की ऊँची मीनारों को छूने का प्रयत्न करते रहें और उसमें रोशनी भरते रहें।

गुस्से नशे को छोड़ने के लिए प्रतिदिन अभ्यास जरूरी है।

कुछ उपाय–

- गुस्से को कम करने के लिए ज्योतिकेन्द्र पर सफेद रंग का ध्यान करें।
- नशे को कम करने या छोड़ने के लिए अप्रमाद-केन्द्र पर ध्यान करें।
- अनुचिंतन करें– गुस्सा मेरा स्वभाव नहीं है। क्षमा मेरा स्वभाव है। मैं फिर गुस्सा क्यों करूँ?
- अनुचिंतन करें– अखाद्य-अपेय तो राक्षसों का, दानवों का खाना पीना है, मैं मनुष्य हूँ, मनुज हूँ– मुझे इस प्रकार के अखाद्य-अपेय पदार्थों का सेवन कभी भी नहीं करना चाहिए।
- अनुप्रेक्षा करें– सहिष्णुता की, सामंजस्य की।
- अनुप्रेक्षा करें– नशामुक्ति की, तनावमुक्ति की।

प्रेक्षाध्यान शिविर में भाग लेकर व्यक्ति का भीतरी रूपांतरण संभव है। अतः गुस्से व नशे से मुक्त होकर कैरियर में कामयाबी हासिल कर सकते हैं।

प्रेक्षाध्यान शिविरों में शिविरार्थियों को गहरे अनुभव होते हैं। उन्हें व्यक्त कर पाना कुछ कठिन-सा होता है। फिर शब्दों की भी अपनी सीमा होती है। प्रत्येक शिविर के अनुभव भी द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के अनुसार परिवर्तित एवं संवर्द्धित भी होते रहते हैं। ऐसे में शिविरार्थियों से अपेक्षा है कि वे प्रेक्षाध्यान डायरी रखने का प्रयास करें। शिविर आयोजक अपने स्तर पर इन अनुभवों का रिकॉर्ड रखते हैं, जिनसे नये जिज्ञासुओं को प्रेरणा मिलती है और द्विपक्षीय सुधार की संभावनाएं बनती हैं। -सम्पादक

प्रेक्षाध्यान-मेगा-शिविर के संभागियों का अनुभव-सार

13 से 19 फरवरी, 2015

⊙ इस शिविर ने मुझे एक नई दिशा और नई सोच दी है। परिस्थिति से प्रभावित न होकर कैसे अपनी मनःस्थिति को संतुलित रखें, मैंने इस शिविर से सीखा। - **श्री राकेश बोहरा, दुबई।**

⊙ मेगा प्रेक्षाध्यान शिविर के सभी कार्यक्रम प्रेरणादायी एवं सुप्रबंधित थे। प्रत्येक कक्षा सारगर्भित एवं स्फूर्तिप्रद लगी। - **डॉ. मोहनलाल जैन, चैन्नई।**

⊙ प्रेक्षा फाउण्डेशन एवं जैन विश्व भारती का धन्यवाद जिन्होंने ऐसा शिविर आयोजित किया। इस शिविर में मैंने कर्मकाण्ड एवं पूजा-पाठ से पृथक जीवन जीने की कला सीखी। - **चन्दभूषण प्रसाद सिंह, बिहार।**

⊙ मैंने इस शिविर में अपने क्रोध पर नियंत्रण करना सीखा और सचमुच अपने भीतर गहरी शान्ति का अनुभव किया। - **शंकरलाल, अध्यापक, लाडनूं।**

⊙ प्रेक्षाध्यान से दुनिया के इस तनाव भरे वातावरण में स्वयं को शान्त, सरल एवं सकारात्मक रखने की कला सीखी है। काम, क्रोध, लोभ एवं मोह को कैसे नियंत्रित किया जा सकता है, इस शिविर में जाना। - **विजयकुमार बरड़िया, सूरत।**

⊙ इस शिविर ने मेरी जिन्दगी को नया आयाम दिया है। अब तक मैं संसार को जानने में लगा था लेकिन पहली बार मैंने स्वयं को जाना है। मैं भाग्यशाली हूं कि इस शिविर में भाग लिया। - **अमीचन्द चौधरी।**

⊙ प्रेक्षाध्यान के प्रयोगों से स्वयं में स्फूर्ति, ऊर्जा एवं प्रफुल्लता का अनुभव किया। अनुप्रेक्षा से सहिष्णुता, अभय एवं मैत्री भावना का विकास हुआ। - **बलदेव डाका, अध्यापक।**

⊙ मेगा प्रेक्षाध्यान शिविर में मुझे पहली बार यह मालूम हुआ कि मनुष्य अपने शरीर एवं आत्मा को पृथक-पृथक देख सकता है। - **दुर्जनसिंह राठौड़, प्रधानाध्यापक।**

⊙ इस शिविर के तीसरे दिन से ही जोड़ों के दर्द की दवाई छूट गई, जो मैं लम्बे समय से ले रहा था। यहां आने के बाद मेरे जोड़ों में दर्द नाममात्र का ही रहा है। - **राजेन्द्र कुमार शर्मा, चूरू।**

⊙ यद्यपि मैं कैंसर के रोग से पीड़ित हूं, लेकिन प्रेक्षाध्यान एवं योग के प्रयोगों को जानकर तो मुझे जीने का सहारा मिल गया। अब मैं शेष जीवन खुशी से जीऊंगी। - **कान्तादेवी शर्मा, चूरू।**

⊙ मैं इस शिविर में आकर जैन विश्व भारती के प्रति कृतज्ञ हूं, जिन्होंने इतना विलक्षण आध्यात्मिक आयोजन किया। मैंने यहां से जो सीखा है, सदैव कानों में गूंजता रहेगा। समणीवृन्द की एक-एक कक्षा मेरे लिये प्रेरणादायी रही। - **लक्ष्मी मैशेरी, मुम्बई।**

⊙ आसन-प्राणायाम, प्रेक्षाध्यान, मंत्र-प्रयोग एवं अनुप्रेक्षा के जो प्रयोग करवाये गये, उनका प्रस्तुतिकरण अत्यन्त प्रभावी एवं स्फूर्तिप्रद था। - **अमरीश कुमार जैन, जयपुर।**

⊙ यहां का सौन्दर्य, शान्ति, चारित्रात्माओं का सान्निध्य मेरे लिये अति आनन्ददायक था। ध्यान एवं योग कक्षाओं की व्यवस्था एवं प्रस्तुतिकरण अनुकरणीय था। - **संगीता नाहटा, सूरत।**

⊙ जैन विश्व भारती तो मुझे पृथ्वी पर स्वर्ग लगा। - **कुसुम राठौड़, शिक्षाध्यापिका, महिला शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, श्री जैन श्वेताम्बर मानव हितकारी संघ, राणावास।**

⊙ मैंने इस शिविर के दौरान ध्यान में जो अनुभव किया है, उसका वर्णन शब्दातीत है। इसे पुनः प्राप्त करने के लिये मैं आगामी शिविर की बेसब्री से प्रतीक्षा कर रही हूं। यद्यपि यह मेरा पांचवा शिविर है लेकिन इस बार मुझे आत्मिक अनुभव हुआ। - **सज्जन मुराणा, कोयम्बटूर।**

प्रेक्षाध्यान शिविर कैलेन्डर

समय-सारणी एवं अन्य विवरण

माह	अवधि	
मार्च	15 से 22.03.15	
अप्रेल	12 से 19.04.15	
मई	01 से 08.05.15	14वां अन्तर्राष्ट्रीय शिविर
जुलाई	12 से 19.07.15	
अगस्त	09 से 16.08.15	
सितम्बर	21 से 28.09.15	
अक्टूबर	13 से 22.10.15	
नवम्बर	15 से 22.11.15	15वां अन्तर्राष्ट्रीय शिविर एवं प्राथमिक
दिसम्बर	06 से 13.12.15	

शिविर स्थल :
तुलसी अध्यात्म नीडम्,
जैन विश्व भारती,
लाडनूं-341306, नागौर
आयोजक :
प्रेक्षा फाउण्डेशन
पंजीकरण शुल्क
सामान्य कमरा - 1100/-,
अटैच्ड सुविधायुक्त कमरे - 2100/-,
वातानुकूलित कमरे - 7100/-
सम्पर्क सूत्र :
+91 1581-226119, +91 82333 44482
अधिक जानकारी हेतु कृपया विजिट करें -
www.preksha.com

प्रेक्षा-विविधा

प्रेक्षा-वाहिनी

प्रेक्षावाहिनी प्रेक्षाध्यान में रुचि रखने वाले ऐसे व्यक्तियों का समूह है, जो प्रेक्षाध्यान के माध्यम से आध्यात्मिक एवं आनन्दमय जीवन जीना चाहते हैं। इसमें सम्मिलित सभी व्यक्ति प्रेक्षाध्यान के साधक हैं। इस समूह में किसी पद का कोई प्रावधान नहीं है। दायित्व निर्वहन हेतु केवल संचालक एवं सह-संचालक की व्यवस्था की गई है।

लक्ष्य : प्रेक्षा प्रणेता आचार्यश्री महाप्रज्ञ द्वारा प्रणीत प्रेक्षाध्यान को जन-जन तक प्रसारित कर आध्यात्मिक वातावरण निर्मित करना।

उद्देश्य :
- व्यक्ति का आध्यात्मिक विकास करना।
- प्रेक्षाध्यान का संगठन सुदृढ़ करना।
- प्रशिक्षित एवं समर्पित योद्धे का निर्माण करना, जो प्रेक्षाध्यान के प्रसार में उपयोगी बन सके।

निर्देशक मंडल : प्रेक्षावाहिनी का संचालन प्रेक्षा फाउण्डेशन द्वारा मनोनीत निर्देशक मंडल द्वारा किया जाएगा। निर्देशक मंडल का दायित्व होगा कि–

१. प्रतिवर्ष जनवरी माह में प्रत्येक शाखा के लिए एक संचालक का चयन करना।
२. प्रत्येक शाखा को केन्द्रीय निर्देश और संवाद से अवगत कराना।
३. प्रत्येक शाखा को प्रेक्षावाहिनी के सम्यक् संचालन के लिए प्रेरित करना तथा कार्य की अवगति लेना।

संचालक : संचालक का दायित्व –

१. अपने क्षेत्र में प्रेक्षावाहिनी का सम्यक् संचालन करना।
२. प्रतिमाह प्रेक्षाध्यान की कक्षा का आयोजन करना।
३. प्रेक्षावाहिनी के सदस्यों की अभिवृद्धि के लिए प्रयत्नशील रहना।
४. प्रत्येक दस सदस्यों के समूह के लिए एक सह-संचालक का चयन करना।
५. प्रत्येक सह-संचालक तक संवाद प्रेषित करना।
६. प्रत्येक सह-संचालक को प्रेक्षावाहिनी के कार्य के लिए प्रेरित करना तथा अवगति लेना।
७. निर्देशक मंडल द्वारा प्रदत्त अन्य कार्यों को क्रियान्वित करना।

सह-संचालक : सह-संचालक का दायित्व –

१. प्रेक्षावाहिनी के संचालन में संचालक का सहयोग करना।
२. प्रेक्षावाहिनी के सदस्यों की अभिवृद्धि हेतु प्रयत्नशील रहना।
३. अपने समूह के सदस्यों तक संवाद प्रेषित करना।
४. प्रेक्षाध्यान की कक्षा में अपने समूह के सदस्यों की उपस्थिति सुनिश्चित करना।
५. संचालक द्वारा प्रदत्त अन्य कार्यों को क्रियान्वित करना।

सदस्य-अर्हता :

१. जो प्रेक्षाध्यान में रुचि रखता है।
२. जो आध्यात्मिक बनना चाहता है।
३. जो सोलह वर्ष से अधिक अवस्था का है।

सदस्यता :

१. किसी सदस्य द्वारा अनुमोदित व्यक्ति ही प्रेक्षावाहिनी का सदस्य बन सकेगा।
२. सदस्यता सहयोग राशि– पंजीकरण (१०० रु.) एवं वार्षिक सहयोग राशि की प्राप्ति के पश्चात् प्रेक्षा फाउण्डेशन द्वारा किट प्रेषित किया जाएगा।
३. प्रत्येक सदस्य का सदस्यता क्रमांक निश्चित रहेगा।
४. निरन्तर तीन कक्षाओं से अनुपस्थित रहने पर सदस्यता पुनः स्वीकार करनी होगी।
५. प्रत्येक सदस्य द्वारा प्रतिवर्ष प्रेक्षा फाउण्डेशन को १०० रु. सहयोग राशि दी जाएगी।
६. प्रेक्षा फाउण्डेशन द्वारा आयोजित शिविर में डिस्काउण्ट का अधिकारी होगा।

दायित्व :

१. प्रतिमाह प्रेक्षाध्यान की कक्षा तथा प्रेक्षावाहिनी के कार्यक्रमों में उपस्थित रहना।
२. प्रेक्षाध्यान के प्रसार के लिए प्रयासरत रहना।
३. प्रेक्षावाहिनी की सदस्यता की अभिवृद्धि के लिए प्रयत्नशील रहना।
४. प्रतिदिन यथासंभव कुछ समय प्रेक्षाध्यान का अभ्यास करना।
५. अपेक्षानुसार संचालक/सह-संचालक का सहयोग करना।

कक्षा :

१. सामान्यतः प्रत्येक माह के प्रथम रविवार को १ घंटा प्रेक्षावाहिनी की कक्षा लगेगी।

कक्षा का क्रम निम्न प्रकार रहेगा :

१. प्रेक्षा गीत २. मंगल भावना ३. प्रेक्षाध्यान
४. प्रेक्षा प्रवचन ५. सूचना ६. सामूहिक उपस्थिति

- सभी कार्यक्रमों में प्रेक्षावाहिनी का बैनर अनिवार्य रूप से लगेगा।
- वेशभूषा सामान्यतः सफेद पोशाक रहेगी एवं सभी सदस्य निर्धारित बैज लगाकर ही उपस्थित होंगे।

अंक प्रणाली :

सभी सदस्यों के मूल्यांकन के लिए एक अंक प्रणाली रहेगी। वर्ष में सर्वाधिक अंक प्राप्तकर्ता को सम्मानित किया जाएगा।

अंक निर्धारण :

कक्षा में उपस्थिति – १०० अंक
कक्षा में अनुपस्थिति – (–) १०० अंक
नए सदस्य को जोड़ने पर – १०० बोनस अंक
जोड़े हुए प्रति सदस्य की उपस्थिति पर – ५ बोनस अंक

अपने क्षेत्र में
प्रेक्षावाहिनी प्रारंभ करने के लिए
संपर्क करें

प्रेक्षा फाउण्डेशन,
तुलसी अध्यात्म नीडम्,
जैन विश्व भारती, लाडनूं (राज.)
मो. +91 9810114949, +91 8233344482

आचार्य तुलसी अंतर्राष्ट्रीय प्रेक्षाध्यान केन्द्र के लिए
'प्रेक्षा कार्ड योजना'

प्रेक्षा प्लेटिनम कार्ड (सहयोग राशि रु. १ लाख) :

कार्ड धारक को प्रदत्त सुविधाएं–

- आचार्य तुलसी अन्तर्राष्ट्रीय प्रेक्षाध्यान केन्द्र में प्रेक्षा फाउण्डेशन द्वारा आयोजित प्रेक्षाध्यान शिविरों में प्रतिवर्ष एक साप्ताहिक शिविर में कार्ड धारक एवं उसके साथ एक अन्य व्यक्ति को २० वर्ष तक नि:शुल्क सहभागिता प्रदान की जाएगी।
- स्वतंत्र वातानुकूलित आवास सुविधा उपलब्ध कराई जायेगी।
- सात्विक एवं शुद्ध शाकाहारी भोजन उपलब्ध कराया जाएगा।
- स्वयं के न आने पर यह सुविधा कार्ड धारक अपने किसी परिजन अथवा मित्रजन को हस्तान्तरित कर सकेगा।
- प्रेक्षा फाउण्डेशन, जैन विश्व भारती द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका प्रेक्षाध्यान की दस वर्षीय नि:शुल्क सदस्यता।

प्रेक्षा गोल्डन कार्ड (सहयोग राशि रु. ५० हजार) :

कार्ड धारक को प्रदत्त सुविधाएं–

- आचार्य तुलसी अन्तर्राष्ट्रीय प्रेक्षाध्यान केन्द्र में फाउण्डेशन द्वारा आयोजित प्रेक्षाध्यान शिविरों में प्रतिवर्ष एक साप्ताहिक शिविर में कार्ड धारक को २० वर्ष तक नि:शुल्क सहभागिता।
- वातानुकूलित आवास सुविधा उपलब्ध कराई जायेगी।
- सात्विक एवं शुद्ध शाकाहारी भोजन उपलब्ध कराया जाएगा।
- स्वयं के न आने पर यह सुविधा कार्ड धारक अपने किसी परिजन अथवा मित्रजन को हस्तान्तरित कर सकेगा।
- प्रेक्षा फाउण्डेशन, जैन विश्व भारती द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका प्रेक्षाध्यान की दस वर्षीय नि:शुल्क सदस्यता।

प्रेक्षा सिल्वर कार्ड (सहयोग राशि रु. २५ हजार) :

कार्ड धारक को प्रदत्त सुविधाएं–

- आचार्य तुलसी अन्तर्राष्ट्रीय प्रेक्षाध्यान केन्द्र में फाउण्डेशन द्वारा आयोजित प्रेक्षाध्यान शिविरों में प्रतिवर्ष एक साप्ताहिक शिविर में कार्ड धारक को २० वर्ष तक नि:शुल्क सहभागिता।
- आवास सुविधा (अटैच्ड) उपलब्ध कराई जायेगी।
- सात्विक एवं शुद्ध शाकाहारी भोजन उपलब्ध कराया जाएगा।
- स्वयं के न आने पर यह सुविधा कार्ड धारक अपने किसी परिजन अथवा मित्रजन को हस्तान्तरित कर सकेगा।
- प्रेक्षा फाउण्डेशन, जैन विश्व भारती द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका प्रेक्षाध्यान की त्रिवर्षीय नि:शुल्क सदस्यता।

नोट :

- प्रेक्षा फाउण्डेशन द्वारा निर्धारित आचार संहिता धारक/शिविरार्थियों के लिए अनिवार्य रूप से पालनी
- पुरुष एवं महिला शिविरार्थियों के लिए पृथक्-पृथक् आवास सुविधा उपलब्ध रहेगी।

फडेशन को लिखित

सूचना प्रेषित करनी होगी।

- शिविरार्थियों की निर्धारित संख्या एवं स्थान की उपलब्धता के अनुसार शिविर हेतु प्राथमिकता के आधार पर सहभागिता की स्वीकृति प्रदान की जाएगी।
- यह कार्ड/सदस्यता अहस्तान्तरणीय होगी।

CELEBRATING 25 YEARS OF SPREADING VALUE EDUCATION

1991 - 2015

सादर आमंत्रण

जैन विश्वभारती संस्थान

(मान्य विश्वविद्यालय)

रजत जयन्ती वर्ष समारोह

(मूल्यपरक शिक्षा के २५वें वर्ष का उत्सव)

सूचित करते हुए प्रसन्नता एवं गौरव की अनुभूति हो रही है कि परमपूज्य आचार्यश्री तुलसी एवं परमपूज्य आचार्यश्री महाप्रज्ञजी की कल्पना का साकार रूप तथा परमपूज्य आचार्यश्री महाश्रमण की अनुशासना में निरन्तर विकास की ओर अग्रसर जैन विश्वभारती संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय) आगामी दिनांक २० मार्च २०१५ को अपने २५वें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। ढाई दशकों की विकास यात्रा की परिसंपन्नता पर संस्थान अपना 'रजत जयन्ती वर्ष समारोह' मनाने जा रहा है। इस अवसर पर दिनांक २०-२१ मार्च २०१५ को 'रजत जयन्ती वर्ष समारोह : प्रथम चरण' जैन विश्व भारती, लाडनूं में आयोजित किया जा रहा है एवं पूरे वर्ष भर इस उपलक्ष्य में देश-विदेश के विभिन्न प्रमुख शहरों में समारोह आयोजित किए जायेंगे। मातृ संस्था जैन विश्व भारती इस ऐतिहासिक आयोजन को जैन विश्वभारती संस्थान के साथ संयुक्त रूप से मनाते हुए गौरवान्वित है।

संस्थान के वर्तमान अनुशास्ता परमपूज्य आचार्यश्री महाश्रमणजी ने रजत जयन्ती वर्ष समारोह के संदर्भ में अपना मंगल आशीर्वचन प्रदान करते हुए जैन विश्व भारती संस्थान को गौरवशाली संस्थान और जैन विश्व भारती को विशिष्ट संस्था का दर्जा देकर इन संस्थानों के महत्व को उजागर किया है।

संपूर्ण धर्मसंघ एकजुट होकर इस आयोजन में सक्रिय रूप से जुड़ता है तो निश्चित ही इस ऐतिहासिक अवसर पर कोई कीर्तिमान रचा जा सकता है और आचार्यश्री तुलसी, आचार्यश्री महाप्रज्ञजी व आचार्यश्री महाश्रमणजी के स्वप्न तथा चिंतन के अनुरूप इस विश्वविद्यालय को एक अद्वितीय विश्वविद्यालय के रूप में देश और दुनिया में प्रतिष्ठित किया जा सकता है।

दिनांक २०-२१ मार्च २०१५ को जैन विश्व भारती, लाडनूं में आयोजित रजत जयन्ती वर्ष समारोह के प्रथम चरण में आप सभी सादर आमंत्रित हैं। पूरे वर्ष में समय-समय पर विभिन्न क्षेत्रों में आयोजित होने वाले कार्यक्रमों की सूचनाएं यथासमय जारी की जाती रहेंगी।

अधिक जानकारी हेतु संपर्क सूत्र

01581-226110, 226116, 226080,

www.jvbharati.org

बसन्तराज भंडारी
कुलाधिपति
जैन विश्वभारती संस्थान

धरमचंद लुंकड़
मुख्य संयोजक
रजत जयन्ती समारोह समिति

समय-समय पर गुरुजनों के मुखारविन्द से जो भाव भाषा बनकर प्रकट होते हैं, वे सुवासित होते हैं। उन सुवासितों को अपनाये जाने पर जीवन में कल्याण घटित हो सकता है। यही है इस स्तम्भ की प्रेरणा। — सम्पादक

तुलसी उवाच्

- धर्म न प्रलोभन से होता है न भय से, वह अन्त:करण की पवित्रता से होता है।
- अंधविश्वास की शुद्ध परिभाषा है- व्यक्ति का अज्ञान।
- बिना कार्य का जीवन मृत्यु से भी बदतर है।
- मानव अकिंचनता से नहीं, निराशा से दरिद्र होता है।
- कोई भी कार्य विवेक के अभाव में अकृत्य बन जाता है।

महाश्रमण उवाच्

- अपनी आलोचना का जवाब जबान से नहीं, अपने महत्त्वपूर्ण कार्यों से दो।
- भाग्य की चिन्ता नहीं, सत्पुरुषार्थ करो। भाग्य स्वत: अच्छा हो जाएगा।
- भलाई का काम करो, भगवान की सच्ची भक्ति हो जाएगी। तुम्हें भी अच्छी शक्ति मिल जाएगी।
- शान्तिमय जीवन का पहला व प्रमुख सूत्र है- ईमानदारी।
- स्पष्ट कहो, पर स्पष्ट सुनने की तैयारी भी रखो।

3 Emotions Experiences Effects

Muni Vatsraj

(Translated from Hindi version)

Three Kinds of Sheaths

Opaque
Translucent
Transparent

Opaque
sheath like a solid wooden door through which no philosophical thought can be comprehended shuts out all philosophical light.
Translucent
like a mesh door having partial visibility.
Transparent
like a glass door
which cannot prevent the visibility of inner light.

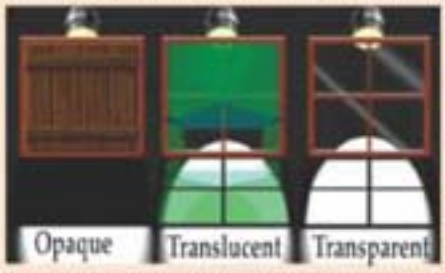

Three Breezes of Emotion

Immoral
like a hurricane

Ethical
like a monsoon

Loveful
like life-giving air

The First
has only the blackness of darkness.
The second
has the drizzle of monsoon.
The third
has the brightness of morning.

Let us know The Body

Acharya Mahapragya

Before you engage yourself in *Sadhana*, you must know the physiology and anatomy of the human brain. It has three parts: the cerebrum, the mid-brain and the lesser brain. It is composed of millions and millions of cells and its structure is highly complex. We have not been able to know it fully as yet. Thousands of scientists have been carrying researches on it for the last many years, but its functioning is still a mystery. It is the source of inclinations, predilections, thoughts and feelings. We have been able to locate several of the brain centres—centres connected with the sense organs, thinking, predilections etc. They are very subtle. Disorders in these centres can now be set right and we can even recast them.

The brain is composed of two kinds of substance. One is a grayish substance which is concerned with thinking and the intellect. The quality of intellectual

The aim of *Sadhana* is to divert the energies of the body and the mind towards the knowledge centres and to strengthen and activate them

activities is determined by the quality of this substance. The other is a whitish substance which is the medium of the other activities of the brain. There are innumerable threads in the cerebrum which carry currents of knowledge. They are the sensory nerves.

Then there are motor nerves which carry impulses of activity to the sense organs from the brain. These nerves pass through the lesser brain and the *Susumna* channel in the spinal cord. From there they go to different parts of the body. Knowledge and activity are, therefore, spread throughout the body. The brain is the controller of the whole of the body.

The brain is the seat of knowledge. The light emanating from the subtle body flows into the gross body through the brain. As a matter of fact, the brain is the connecting link between the subtle and the gross bodies. Consciousness flows into the mind through the brain. Knowledge of the brain is, therefore, necessary for the practitioner of *Sadhana*. He can successfully develop the knowledge centres with the help of the knowledge of the brain we have accumulated. There is a centre of knowledge in the brain which has been called the *Sahasrara Chakra*. It may be called the centre of the intellect. We can develop our knowledge immensely by activating this *Chakra*.

The practitioner has to concentrate his mind on the yellow colour of the palate for ten minutes and he will come to feel that his intellectual powers are growing. Such a concentration ultimately leads to comprehensive knowledge.

Besides the knowledge centres, there is another centre somewhere near the waist which is the centre of *Kama* or carnal desires. Carnal tendencies produce several kinds of desires and tensions in man. Anger, pride, deceit, greed etc. produce excitements in the mind. These tensions are, of course, short lived. Carnal desires produce tensions of longer durations also. They are the strongest tensions. If the psychosomatic energy of the body begins to flow into the *Kama* centre, it has an adverse effect on the knowledge centres and begins to weaken them. If it flows into the knowledge centres, it weakens the *Kama* centre. That is the relation between knowledge and the *Kama* centres.

The aim of *Sadhana* is to divert the energies of the body and the mind towards the knowledge centres and to strengthen and activate them. What happens ordinarily is the opposite of this. The practitioner has to affect an upward flow of these energies through the *Susumna* channel.

There are three main channels of energy in the body. The *Susumna* channel is situated in the middle flanked on both sides by two other channels. The *Prana* (vital force) flows upwards through these two channels. The channel on the left side of the *Susumna* is called Ida and that on the right is called Pingala. The *Susumna* is situated between these two. The spinal column is composed of thirty six bones. The *Susumna* is of yellow colour. *Prana* currents flow through this channel. The Ida begins from the lower outskirts of the spinal cord and ends at the left nostril. The *Pingala* also begins at the lower end of the spinal cord and ends at the right nostril. The *Susumna* also begins at the lower end of the spinal cord and reaches up to the brain. The practitioner has to concentrate the *Prana* current in the *Susumna* only so that it may be carried to the brain. The current flowing through the central channel alone reaches the brain. The practitioner should fill the knowledge centres with the *Prana* currents.

The practice of long breathing is beneficial for the body. It cleans the lungs by pumping sufficient oxygen into them and by releasing carbon dioxide from them. This improves the functioning of the liver and the stomach. The practice of long breathing has another function also. Physical health

is necessary for the practitioner, but it is not the final aim of *Sadhana*. The body is only a means. The practice of long breathing has a spiritual aim also which is more important. Long breathing widens the *Susumna* channel and activates the electric currents passing through it. These currents are like the strong current of air blown out by the bellows of the iron-smith. When the *Prana* currents begin to pass through the central channel, they strengthen the knowledge centres in the brain. Thus the purpose of long breathing is a spiritual purpose.

When long breathing is done with a concentrated mind, devotion and earnestness, the practitioner will begin to feel vibrations in the spinal cord. This feeling grows stronger and stronger in the course of the practice of long breathing. It produces peace of mind and a feeling of self-absorption. The entire body becomes cool. The practitioner begins to feel as if he is resting in the cool shade of a tree after a long and tiring journey. Another consequence of long breathing, after the practitioner has somewhat accustomed himself to it, is that in a short time he will begin to feel a state of thoughtlessness in his mind and the activities of the mind come to a stop. All this is due to the flow of the *Prana* current through the *Susumna*. When the *Prana* flows through the *Pingala*, it produces fickleness of the mind and makes the body sloth. The *Prana* currents flowing through the *Susumna* put an end to all kinds of fickleness. We should understand and appreciate this fact. That is why the practitioner should have a correct knowledge of the structure of the human body and the brain.

Let us now consider the other centres of knowledge. A little higher up in the brain is the *Agya Chakra*. This is a powerful centre of psychic energy. It has immense potential. Some psychologists and Para-psychologists have called it the seat of omniscience. In Hindu mythology, it has been represented as the third eye. It is situated below the roof of the skull deep between the eyebrows. There is a lot of literature on the third eye. The human body has a number of psychic centres and the third eye is one of them. These psychic centres are connected with nerve plexuses. We may call the nerve plexuses by any name we like. The actual centres do not exist in the gross body. They manifest themselves in it. They are situated deep into the subtle body. It is quite possible that they belong to the gross body. But they are there in the subtle body, no doubt.

The *Agya Chakra* is a powerful psychic centre. Sometimes people ask if it is possible to awaken consciousness fully. It is really very difficult to do so. The fact is that such an awakening depends on the amount of effort we put in. But it is certain that if we concentrate on the *Agya Chakra* for full three hours at a stretch, which is rather very difficult, we will not complain that it is not possible to activate the psychic centres. It is difficult to concentrate even for ten minutes without any kind of distraction. But a resolved and devoted practitioner is bound to succeed. What is needed is faith, earnestness and dedication.

Some people complain that the practitioners of Yoga are idlers. The truth, however, is that the practitioner has to employ almost superhuman energies, so much so that he becomes physically and mentally exhausted. He may, sometimes, even die of exhaustion. Hard *Sadhana* often produces physical ailments, because it needs the expending of enormous energy. Even a little hard intellectual labour produces irritating heat in the body. The heat generated in the course of Sadhana produces unbearable physical and mental strain.

Dhyana also involves the expending of a lot of energy. The more the exertion, the more the amount of energy to be expended. The practitioner cannot arrive at a state of thoughtlessness without such an exertion. The successful completion of *Sadhana* is a herculean task.

The third psychic centre is located in the throat. It is called the *Vishuddhi Chakra*. It is connected with desires, subconscious tendencies and predilections. They can be subdued and controlled by activating the *Vishuddhi Chakra*. It cleanses and purifies the mind and sublimates the desires.

The fourth psychic centre is the *Nabhi Chakra* or the navel. It is the seat of fire and heat. It produces vigour. Concentration on this centre activates the subconscious mind. The *Vishuddhi* and the *Nabhi Chakra* have to be activated simultaneously, otherwise there may be serious complications. They produce vigour, store energy and pacify subconscious tendencies.

The heart is also a very important psychic centre. It is next to the brain in importance. Whether the brain or the heart is the seat of the soul has been a long drawn controversy. According to *Ayurveda*, the heart is the seat of the soul. The terms *Chaitya Purusha, Hridaya Purusha* etc. have often been used

to describe the seat of the soul. In popular devotional songs also the heart is said to be the seat of the soul. It occupies the central position in the body. Life depends on the functioning of the heart. It comes to an end as soon as the heart has ceased to function. It circulates blood in the body. Blood is life. The brain is the implement of thinking. The heart is the instrument of emotive activities. Concentration on the heart turns our entire energy inwards and that is why it occupies an important place in *Sadhana*.

There is no agreement among the authorities as to the number of psychic centres in the body. Some believe them to be six, others seven and yet others eight. In my opinion, there should be more than eight.

The equi-puncture technique of treating diseases speaks of some seven hundred vital points in the body. The current of consciousness passes through all these points. Many kinds of diseases can be cured by activating these points. The vital points are mysterious points. Consciousness manifests itself through them. The Chinese came to discover these points in the course of their investigations in medicine. They are also important from the point of view of *Sadhana*.

The *Muladhara Chakra* is situated at the lower end of the spinal cord. It is a psychic centre and occupies an important place in *sadhana*. It also generates electric currents. It is also the storehouse of all the energy generated in the body.

There is a method of testing whether the mind has become concentrated. As soon as you begin to concentrate, the tissues and fibers in the lower parts of the body begin to become alert. The practitioner feels that they are being attracted from above. This is the test of the concentration of the mind. The concentrating mind is connected with the tissues and fibers of the body. During concentration, electric currents in the body begin to rise upwards. The more the concentration, the greater will be the contraction in the body. The practitioner can thus go on testing whether the mind is being concentrated. Contraction in the lower parts of the body is a symptom of the concentration of the mind on some centres of the body. This means a change in the direction of the flow of the electric current in the body. The more the concentration, the stiffer will become the upper parts of the body. It is like the functioning of the roots of a tree. The stronger the roots, the healthier will become the upper parts of the tree. Concentration of the mind results in strengthening the energy centres in the upper parts of the body. It is, therefore, desirable to concentrate on the *Muladhara*.

Let us now consider the subtle body which is very important in *Sadhana*. Where from do the desires, predilections and subconscious tendencies come into the conscious mind? Their source does not lie in the gross body. They come from the subtle body and manifest themselves in the conscious part of the mind through the brain. We cannot perceive the subtle body because it remains hidden beneath several covers.

The practitioner has to do a lot of exertion in order to perceive the subtle body. He can not only perceive his own subtle body, he can also perceive the subtle bodies of others. We can see auras around our own as well as other bodies.

Here I would like to mention a small experiment. If some body comes to you while you are meditating, look at him for a minute or two and then close your eyes. You should keep your eyes wide open when you see him. In doing so, you will see a glow of light. This glow is the aura around the body of the visitor. It is in this way that we can see our own as well as others' subtle bodies. What you see is the *Taijasa* replica of the visitor even while your eyes are closed.

It is, therefore, necessary to understand the gross as well the subtle body and how the former is influenced by the latter. By intercepting the vibrations of the subtle mind, you can change the direction of its workings.

The practice of long breathing is beneficial for the body. It cleans the lungs by pumping sufficient oxygen into them and by releasing carbon dioxide from them. This improves the functioning of the liver and the stomach.

प्रेक्षा संवाद

स्वयं सत्य खोजें

अमृत वचन

- जिसे तुम अपना मित्र बनाते हो, उसके साथ सच्चा हार्दिक संबंध कायम करो। परस्पर एक दूसरे का हित करने का संकल्प करो।
- अपनी आकांक्षाओं को सीमित करो, दुःख भी सीमित हो जाएगा।

- आचार्य महाश्रमण

प्रेक्षाध्यान का मेगा प्रशिक्षण शिविर जैन विश्व भारती, लाडनूं में सोत्साह सम्पन्न

लाडनूं, नागौर।

जैन विश्व भारती के 'आचार्य तुलसी अन्तर्राष्ट्रीय प्रेक्षाध्यान केन्द्र' में प्रेक्षा फाउण्डेशन, जैन विश्व भारती द्वारा दिनांक १३-१६ फरवरी २०१५ को आयोजित मेगा प्रेक्षाध्यान शिविर सानंद सम्पन्न हुआ।

शिविर का शुभारम्भ 'शासनश्री' मुनिश्री पानमलजी के पावन सान्निध्य में हुआ। उद्घाटन सत्र में अपने उद्बोधन में मुनिश्री ने शुभ-ध्यान को अपने जीवन में धारण करने की प्रेरणा देते हुए कहा कि ध्यान अमृत है। इससे इहलोक और परलोक दोनों को सुधारा जा सकता है। इस अवसर पर मुनिश्री हिमांशुकुमारजी ने बताया कि नया सीखने के लिये भीतर से खाली होना आवश्यक है। उन्होंने मौन, ध्यान, समय-प्रबन्धन और स्व-प्रबन्धन के महत्व को प्रतिपादित किया।

ध्यान-दीक्षा के रूप में शिविरार्थियों को उपसंपदा का संकल्प करवाते हुए समणी नियोजिका ऋजुप्रज्ञाजी ने कहा कि ध्यान की अतल गहराइयों में पहुंचने के लिये प्रबल इच्छाशक्ति, दृढ़ संकल्प, एकाग्रता और तादात्म्यभाव अत्यन्त अपेक्षित है। ध्यान हमें भीतर ले जाता है। बाहर की यात्रा हेतु जैसे साधन अपेक्षित हैं वैसे ही भीतर की यात्रा साधना के बिना नहीं हो सकती। ध्यान को परिभाषित करते हुए उन्होंने कहा कि अतीत की स्मृति और भविष्य की कल्पना से मुक्त वर्तमान में रहने का अभ्यास ही ध्यान है।

जैन विश्व भारती के न्यासी एवं प्रेक्षा फाउण्डेशन के चेयरमेन श्री सुखराज परमार ने स्वागत भाषण प्रस्तुत किया। जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय की कुलपति समणी चारित्रप्रज्ञाजी, साध्वीश्री अक्षयप्रभाजी और विमल विद्या विहार की निदेशक समणी मधुरप्रज्ञाजी, जैन विश्व भारती के अध्यक्ष श्री धरमचन्दजी लूंकड़ ने भी अपने विचार व्यक्त किये। मंगलाचरण समणी मृदुप्रज्ञाजी एवं संचालन समणी श्रेयसप्रज्ञाजी ने किया। इस अवसर पर जैन विश्व भारती के कुलपति बच्छराज दूगड़, न्यासी भागचन्द बरड़िया, उपाध्यक्ष मदनचन्द दूगड़, जीवनमल जैन, मंत्री अरविन्द गोठी, निदेशक राजेन्द्र खटेड़, जैन विश्व भारती

प्रेक्षाध्यान का मेगा प्रशिक्षण शिविर

संस्थान के कुलसचिव डॉ. अनिलधर, प्रो.जे.पी.एन. मिश्रा, डॉ. आनन्दप्रकाश त्रिपाठी, जीवन विज्ञान अकादमी के सहायक निदेशक हनुमान मल शर्मा सहित समाज के अनेक गणमान्य महानुभाव उपस्थित थे।

सप्त दिवसीय शिविर के दौरान प्रतिदिन समणी नियोजिका ऋजुप्रज्ञाजी ने प्रेक्षाध्यान के सैद्धान्तिक पक्ष का प्रशिक्षण दिया, जिसमें उन्होंने प्रेक्षाध्यान की उपसंपदा, आध्यात्मिक आधार, आगमिक आधार, सहायक अंग, मुख्य अंग और विशिष्ट अंगों की चर्चा करते हुए बताया कि आत्मशुद्धि हेतु शरीर, श्वास, मन, प्राण, भाव और कर्मशुद्धि आवश्यक है। प्रेक्षाध्यान के विविध प्रयोगों द्वारा इन्हें शुद्ध किया जा सकता है।

शिविर के प्रतिदिन का प्रारम्भ और समापन समणी श्रेयसप्रज्ञाजी के ध्यान के चार चरण– कायोत्सर्ग, अन्तर्यात्रा, श्वास प्रेक्षा और ज्योति केन्द्र प्रेक्षा के अभ्यास द्वारा हुआ। ध्यान में स्थिरता से बैठ सकें एवं शरीर की अकड़न को दूर कर सकें इसके लिये प्रतिदिन आसन-प्राणायाम की कक्षाएं समणी मृदुप्रज्ञाजी, समणी अमितप्रज्ञाजी एवं प्रशिक्षक रामदेव ने ली।

मुनिश्री हिमांशुकुमारजी ने शिविरार्थियों को अभय और मैत्री की अनुप्रेक्षा से भावित किया।

वहीं समणी विनयप्रज्ञा ने मंत्रों के महत्व को प्रतिपादित करते हुए विभिन्न साधनोपयोगी मंत्रों के प्रयोग करवाये। ध्यान, जप, आसन-प्राणायाम द्वारा आध्यात्मिक लाभ के साथ-साथ शारीरिक और मानसिक लाभ भी कैसे प्राप्त किया जा सकता है, इसकी जानकारी समणी मल्लिप्रज्ञाजी ने शिविरार्थियों को दी और प्रयोग भी करवाये। सम्पूर्ण कायोत्सर्ग का प्रयोग समणी मंजुलप्रज्ञाजी एवं प्रशिक्षक महावीर प्रजापत ने करवाया।

शिविर समापन समारोह में उपस्थित शिविरार्थियों एवं गणमान्य व्यक्तियों को संबोधित करते हुए समणी नियोजिका समणी ऋजुप्रज्ञा ने कहा कि परमकृपेय आचार्यप्रवर की असीम अनुकम्पा और आशीर्वाद से यह शिविर सानन्द सम्पन्न हो रहा है। जैसा कि आप जानते हैं– अध्यात्म साधना ऊर्ध्वारोहण की यात्रा है। इस यात्रा में क्रोध, मान, माया, लोभ, छल-कपट, अहंकार रूपी लगेज जितना कम होगा, यह यात्रा उतनी ही सुगम और सफल होगी। पके हुए फल का उदाहरण देते हुए उन्होंने व्यवहार की मृदुता, वाणी की मधुरता और चेहरे पर सौम्य तेज को साधना की परिपक्वता की पहचान बताया। शिविरार्थियों को प्रेरणा देते हुए उन्होंने कहा कि आज शिविर का समापन हो रहा है परन्तु साधना का नहीं। आप अपने जीवन में आध्यात्मिक उन्नति का लक्ष्य बनाकर निरन्तर साधना करते रहें। जब आपके परिवारजन आपमें परिवर्तन महसूस करेंगे, आपके व्यवहार में परिवर्तन परिलक्षित होगा, तभी आपका शिविर में आना सार्थक होगा।

जैन विश्व भारती के अध्यक्ष धरमचन्द लूंकड़ ने समणीवृन्द के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा कि इस शिविर की सफलता में सम्पूर्ण जैन विश्व भारती परिवार का सहयोग रहा। यहां के प्रत्येक कर्मकर ने अपने दायित्व का निष्ठा से निर्वहन किया। तेरापंथ किशोर परिषद के संयोजक कन्हैयालाल छाजेड़ ने अपने उद्गार व्यक्त करते हुए कहा कि शिविर एवं परिसर के वातावरण में आपकी साधना का क्रम अच्छा और आपने स्वयं में परिवर्तन अनुभव किया

परन्तु यह परिवर्तन आपके परिवारजनों को भी दिखाई देना चाहिए। कार्यक्रम में लाडनूं नगरपालिका के अध्यक्ष एवं जैन विश्व भारती के कुलपति बच्छराज नाहटा, न्यासी रमेश बोहरा एवं प्रशिक्षक रामदेव ने भी अपने विचार व्यक्त किये। जैन विश्व भारती संस्थान, जैन विश्व भारती, तेरापंथ महिला मण्डल, लाडनूं के पदाधिकारियों सहित समाज के अनेक गणमान्य महानुभाव इस अवसर पर उपस्थित थे। कार्यक्रम का सफल संयोजन समणी श्रेयसप्रज्ञा ने किया। प्रारम्भ समणी मृदुप्रज्ञा द्वारा प्रस्तुत मधुर भजन "धीरे-धीरे मोड़ तूं इस मन को..." से हुआ।

इस शिविर में मानव हितकारी संघ, राणावास के अध्यक्ष अमरचंद लूंकड़, विप्रो के पूर्व अध्यक्ष एवं टेक्नो कन्सलटेन्ट्स, मुंबई के चैयरमेन डॉ. ललित मैजेरी सहित राजस्थान, मध्यप्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक आंध्रप्रदेश, उत्तरप्रदेश, बिहार, अरुणांचल प्रदेश, दिल्ली, महाराष्ट्र, उड़ीसा, असम, पश्चिम बंगाल, गुजरात एवं विदेश की धरती दुबई आदि स्थानों से ७७० भाई-बहनों ने भाग लेकर प्रेक्षाध्यान, आसन-प्राणायाम, कायोत्सर्ग, श्वास प्रेक्षा, शरीर प्रेक्षा, चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा, अनुप्रेक्षा एवं शरीर विज्ञान आदि का सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक प्रशिक्षण प्राप्त किया।

शिविर को सफल बनाने में जैन विश्व भारती के अध्यक्ष श्रीमान धरमचन्द लुंकड़, न्यासी एवं प्रेक्षा फाउण्डेशन के चैयरमेन श्री सुकनराज परमार, मंत्री श्री अरविन्द गोठी, न्यासी श्री रमेश बोहरा, शिक्षा विभाग के राष्ट्रीय संयोजक श्री अमरचंद लुंकड़, संचालिका समिति सदस्य श्री गणपतराज डागा, निदेशक श्री राजेन्द्र खटेड़ एवं दुबई क्षेत्र के संयोजक श्री राकेश बोहरा, दिल्ली से समागत सुश्री रश्मि सिंघी आदि का महत्वपूर्ण योगदान व उल्लेखनीय प्रयास रहा।

शिविर प्रशिक्षण क्रम में समणी मधुरप्रज्ञा, समणी कुसुमप्रज्ञा, समणी चारित्रप्रज्ञा, समणी मल्लिप्रज्ञा, डॉ. मोहनलाल दूगड़, प्रो. जे.पी.एन. मिश्रा ने भी साधना के विविध पक्षों- समता, सहिष्णुता, अप्रमत्तता, अनासक्ति आदि विषयों पर प्रकाश डाला तथा छोटे-छोटे प्रयोग भी करवाये। प्रतिदिन

प्रेक्षाध्यान का मेगा प्रशिक्षण शिविर

मेगा शिविर के प्रतिभागीजन

संध्याकालीन गमनयोग के पश्चात मंगलभावना और जिज्ञासा समाधान का क्रम भी रहा जिसमें सभी शिविरार्थियों ने अपनी जिज्ञासाओं को समाहित किया। साधक श्री जीतमल फुलफुलिया, श्री हनुमान मल शर्मा, श्री महावीर प्रजापत, श्री रामदेव का प्रशिक्षण में एवं डॉ. विजयश्री शर्मा, श्री संजय बोथरा, श्रीमती सरिता सुराणा, श्रीमती सरला दूगड़, श्री बृजमोहन शर्मा, श्री मूलचंद गुर्जर, श्री बाबूलाल गुर्जर, श्री भूराराम देवासी, श्री चंदनमल भोजक, श्री हनुमान दरोगा, श्री सुशील मिश्रा सहित संपूर्ण कर्मचारियों का विभिन्न व्यवस्थाओं में सराहनीय योगदान रहा।

एक दिवसीय प्रेक्षाध्यान व योग शिविर का आयोजन

नागपुर।

साध्वीश्री राकेशकुमारी जी के सान्निध्य में महाप्रज्ञ प्रेक्षाध्यान केन्द्र द्वारा एक दिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर का सफल आयोजन किया गया। शिविर में ६० शिविरार्थियों ने भाग लिया।

साध्वीवृन्द द्वारा मंगलाचरण के रूप में प्रेक्षागीत का संगान किया गया। साध्वीश्री राकेशकुमारी जी ने महाप्रज्ञ प्रेक्षाध्यान केन्द्र में प्रतिदिन नियमित रूप से चलने वाली क्लास की सराहना करते हुए प्रेक्षाध्यान की बारिकियों के बारे में शिविरार्थियों को विस्तारपूर्वक समझाया। प्रेक्षा प्रशिक्षक श्री आनन्दमल सेठिया, श्री सुनील खाजेड़, श्री जतन मालू व संगीता पुगलिया ने आसन, प्राणायाम, यौगिक क्रियाएं, ध्यान के चार चरण, कायोत्सर्ग, शरीर विज्ञान, अनुप्रेक्षा एवं मंत्रध्यान आदि के प्रयोग करवाए। सभी शिविरार्थियों ने काफी मनोयोगपूर्वक प्रयोग किए। जैन-जैनेत्तर सभी भाई-बहिनों ने शिविर में भाग लिया।

शिविरार्थियों ने शिविर को काफी उपयोगी बताया। श्रीमती गीतादेवी पूत, नंदिनी जैनेरिया, देवकी राजुरकर, माधुरी ईश्वरकर, प्रीति सेलोटकर, उषा अग्रवाल, कीर्ति श्रीरामे, प्रसन्ना गुप्ता आदि ने अपने अनुभव बताते हुए शिविर आयोजकों के प्रति धन्यवाद ज्ञापित किया।

ठाकुर विद्या मन्दिर, मुम्बई में जीवन विज्ञान की नियमित कार्यशाला

मुम्बई।

श्री तुलसी महाप्रज्ञ फाउण्डेशन, मुम्बई के तत्त्वावधान में जीवन विज्ञान अकादमी के अध्यक्ष श्री प्यारचंद मेहता और वरिष्ठ प्रेक्षा प्रशिक्षक श्री पारसमल दूगड़ के निर्देशन में स्थानीय ठाकुर विद्यामन्दिर स्कूल में जीवन विज्ञान कार्यशालाओं का नियमित आयोजन किया जा रहा है।

प्रेक्षा प्रशिक्षिका श्रीमती उषा जैन ने बच्चों को मेमोरी पॉवर बढ़ाने के प्रयोग करवाए। श्री दूगड़ ने कार्यशाला के एक सत्र में अभय की अनुप्रेक्षा का प्रयोग करवाया और बच्चों को सिखाया की मन से डर को कैसे भगाया जाये? बच्चे इन कार्यशालाओं में नियमित सोत्साह भाग ले रहे हैं।

नियमित कार्यशालाओं में भाग लेने के कारण उनके स्वभाव व आदतों में परिवर्तन परिलक्षित हो रहा है। उनका क्रोध शांत हो रहा है और उनके मन की चंचलता कम हो रही है। मन की एकाग्रता में वृद्धि हो रही है और नकारात्मक विचार कम हो रहे हैं। प्रेक्षा प्रशिक्षक श्रीमती उषा जैन का नियमित मार्गदर्शन मिल रहा है।

प्रेक्षाध्यान एवं जीवनविज्ञान समाचार संक्षेप में

आचार्यश्री तुलसी ग्लोबल ध्यान केन्द्र में चार दिवसीय कार्यशाला

गुड़गांव, हरियाणा। प्रेक्षाप्राध्यापक मुनिश्री किशनलालजी के सान्निध्य में हेरिटेज स्कूल, गुड़गांव के समीपस्थ आचार्यश्री तुलसी ग्लोबल ध्यान केन्द्र में चार दिवसीय 'प्रेक्षाध्यान योग कार्यशाला' का आयोजन किया गया। समण सिद्धप्रज्ञजी ने आसन, प्राणायाम एवं यौगिक क्रियाओं का प्रशिक्षण दिया। मुनि श्री नीरजकुमारजी ने कायोत्सर्ग के प्रयोग करवाए। लगभग ३० व्यक्तियों ने ध्यान-योग के प्रयोगों का लाभ उठाया। समापन सत्र में शिविरार्थियों ने अपने-अपने अनुभव सुनाए एवं नियमित अभ्यास के लिए संकल्प लिया।।

तेयुप, तेजपुर के तत्त्वावधान में तीन दिवसीय कार्यशाला

तेजपुर, असम। तेयुप, तेजपुर द्वारा तीन दिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर का आयोजन किया गया। नागपुर (महाराष्ट्र) के प्रशिक्षक श्री आनन्दमल सेठिया ने शिविर में विविध प्रेक्षा-प्रयोग करवाए। शिविर में ६० संभागियों ने सोत्साह प्रेक्षाध्यान के प्रयोगों का लाभ लिया। समापन सत्र में जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा के राज्य प्रभारी श्री दिलीप दूगड़, स्थानीय तेयुप सचिव श्री अमिताभ बोथरा, तेरापंथ महिला मंडल अध्यक्षा श्रीमती सरोजदेवी बैद, स्थानीय सभा की तरफ से श्री उत्तमचन्द बैद ने अपने विचार व्यक्त किए। कार्यक्रम का संचालन मदन दूगड़ ने किया।

दिल्ली में प्रेक्षावाहिनी संचालन

दिल्ली। प्रेक्षावाहिनी, दिल्ली के सन्दर्भ में श्री विमल गुनेचा की सूचना के अनुसार यहां कृष्णानगर, शाहदरा, लक्ष्मीनगर, शास्त्रीनगर, शालमार बाग, मॉडलटाउन, उत्तमनगर, लाजपतनगर एवं कृष्णानगर-२ में प्रेक्षावाहिनी की मासिक कक्षाएं नियमित रूप से संचालित हो रही हैं।

विनायकराव देशमुख हाइस्कूल में जीवन विज्ञान

नागपुर, महाराष्ट्र। स्थानीय जीवन विज्ञान अकादमी के अध्यक्ष श्री आनन्दमल सेठिया द्वारा प्रेषित सूचनानुसार विनायकराव देशमुख हाईस्कूल, नागपुर के लगभग १००० विद्यार्थियों के बीच जीवन विज्ञान के प्रयोग करवाए गए।

ठाणे में विभिन्न स्थानों पर जीवन विज्ञान के आयोजन

ठाणे, महाराष्ट्र। श्रीमती प्रतिभा चौपड़ा, ठाणे के अनुसार ठाणे के विभिन्न स्थानों में जीवनविज्ञान की कक्षाओं का नियमित संचालन हो रहा है। श्रीमती कान्ता श्रीश्रीमाल द्वारा ठाणे-वेस्ट में, श्रीमती मीना बाफणा द्वारा ठाणे-कोपरी में, श्रीमती सीमा सांखला द्वारा ठाणे के एक विद्यालय में जीवन विज्ञान का प्रशिक्षण दिया जा रहा है।

वृद्धों ने सीखी प्रेक्षाध्यान की विधियां

मुम्बई। प्रेक्षाध्यान योग साधना केन्द्र के तत्त्वावधान में दौलतनगर के 'आधार वृद्धाश्रम' में प्रेक्षाध्यान एवं मुद्रा विज्ञान की कार्यशाला का आयोजन किया गया। कार्यशाला में वरिष्ठ प्रेक्षा प्रशिक्षक श्री पारसमल दूगड़ ने प्रशिक्षण प्रदान किया।

जीवन विज्ञान अकादमी, नागपुर द्वारा असम संगठन यात्रा

नागपुर। जीवन विज्ञान अकादमी, नागपुर के अध्यक्ष श्री आनन्दमल सेठिया ने जीवन विज्ञान अकादमी की ओर से असम की संगठन यात्रा की। सात क्षेत्रों ने जीवन विज्ञान अकादमी के गठन की स्वीकृति दी। इस यात्रा के दौरान बरपेटारोड में दो दिवसीय प्रेक्षाध्यान कार्यशाला का आयोजन किया गया। तेरापंथ महिला मंडल, तेजपुर की बहिनों के लिए दो दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया।

नागपाल पब्लिक स्कूल में जीवन विज्ञान कार्यक्रम

दिल्ली। प्रेक्षाप्राध्यापक मुनिश्री किशनलालजी के सान्निध्य में अध्यात्म साधना केन्द्र के तत्त्वावधान में 'नागपाल पब्लिक स्कूल', छतरपुर में जीवनविज्ञान-योग का प्रशिक्षण प्रदान किया गया। समणश्री सिद्धप्रज्ञ ने जीवनविज्ञान व प्रेक्षाध्यान के प्रयोग करवाए। कार्यक्रम में मुनिश्री निकुंजकुमार एवं प्राचार्यश्री टेकिचन्द्रसिंह के अलावा शिक्षक वर्ग एवं विद्यार्थियों की अच्छी उपस्थिति रही।

शिक्षा के साथ संस्कारों का प्रशिक्षण आवश्यक

सवाईमाधोपुर, राजस्थान। मुनिश्री रमेशकुमारजी के सान्निध्य में स्थानीय माध्यमिक आदर्श विद्या मन्दिर, विवेकानन्दपुरम में विद्यालय के ४०० विद्यार्थियों एवं शिक्षकों के मध्य जीवनविज्ञान संगोष्ठी का आयोजन किया गया। विद्यालय के प्रधानाध्यापक श्री जगदीशजी द्वारा मुनिश्री का स्वागत एवं आभार ज्ञापित किया गया।

संगोष्ठी को संबोधित करते हुए मुनिश्री ने फरमाया कि शिक्षा से बच्चों में सर्वांगीण विकास हो, तब शिक्षा सार्थक होती है। आज शिक्षा का स्तर बढ़ा है, वहीं संस्कार घट रहे हैं। अपेक्षा है शिक्षा के साथ बच्चों को भारतीय सभ्यता एवं परम्परा के संस्कारों से संस्कारित किया जाए।

जुडो-कराटे के समारोह में जीवन विज्ञान

दिल्ली। अध्यात्म साधना केन्द्र में 'इण्डिया डोजन स्पोर्टस ऑर्गनाइजेशन', दिल्ली द्वारा आयोजित जूडो-कराटे समारोह में बच्चों ने प्रेक्षाप्राध्यापक मुनिश्री किशनलालजी के सान्निध्य में जीवनविज्ञान के सैद्धान्तिक पक्ष को जाना। मुनिश्री ने फरमाया कि जीवनविज्ञान जीने की कला का विज्ञान है। अध्यापक, बच्चों एवं अभिभावक तीनों के लिए इसका प्रशिक्षण बहुत जरूरी है। समणश्री सिद्धप्रज्ञ ने जीवनविज्ञान-योग शिक्षा का प्रशिक्षण दिया। मास्टर टीएन सैकिया ने स्वागत व आभार व्यक्त किया। शिक्षा एवं खेल विभाग की श्रीमती रेखा आर्य ने अपने विचार व्यक्त किए।

एक दिवसीय प्रेक्षाध्यान कार्यशाला का आयोजन

कुर्ला, मुम्बई। स्थानीय तेरापंथ भवन में मुनिश्री संजयकुमारजी आदि ठाणा-३ के सान्निध्य में एक दिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर का आयोजन किया गया। श्रीमती करुणा कोठारी एवं श्री महावीर कोठारी द्वारा प्रेषित सूचना के अनुसार कार्यशाला में बच्चों ने विशेष उत्साह के साथ भाग लिया।

प्रेक्षा विश्व भारती, कोबा (गांधीनगर) द्वारा प्रेक्षाध्यान के विविध कार्यक्रम आयोजित

छात्राओं ने सीखे प्रेक्षाध्यान के प्रयोग

कोबा, गांधीनगर (गुजरात)।

प्रेक्षाध्यान एकेडमी द्वारा एम. एम. सिंघी कॉलेज ऑफ नर्सिंग, अहमदाबाद की नर्सिंग छात्राओं के बीच प्रेक्षाध्यान योग कार्यशाला का आयोजन किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता कॉलेज की प्राचार्या एवं निदेशक श्रीमती भारती शुक्ला ने की। सूरत से समागत प्रेक्षा प्रशिक्षक श्री राजेश कुमार पांडेय ने कॉलेज की १५० छात्राओं को प्रेक्षाध्यान के प्रयोग करवाए। वरिष्ठ प्रेक्षा प्रशिक्षक श्री शंभुदयाल टाक ने विभिन्न प्रयोगों का सैद्धान्तिक विवरण दिया और कायोत्सर्ग व दीर्घश्वास प्रेक्षा के प्रयोग करवाए। कार्यक्रम में श्री अशोककुमार जैन का विशेष सहयोग रहा।

प्रेक्षा-अभ्यास से विवेक-शक्ति एवं सहिष्णुता का विकास संभव

अनुसूचित जाति सरकारी कन्या छात्रालय, सेक्टर १३, गांधीनगर की छात्राओं के बीच समणी अक्षयप्रज्ञा के निर्देशन में प्रेक्षाध्यान कार्यशाला का आयोजन किया गया। प्रेक्षाध्यान ऐकेडमी, कोबा द्वारा आयोजित इस कार्यक्रम में रोटरी क्लब, गांधीनगर के प्रेसीडेंट श्री यशवंत के. जोशी ने छात्रालय के बारे में जानकारी दी। छात्रालय की अध्यक्षा श्रीमती हंसाबेन शर्मा ने सभी आगंतुक मेहमानों का स्वागत किया। मुख्य वक्ता समणी अमृतप्रज्ञा ने अपने उद्बोधन में कहा कि- 'छात्राओं में हर समय कुछ नया करने की इच्छाशक्ति होनी चाहिए, इसके लिए विवेक-शक्ति को जागृत करना बहुत जरूरी है। प्रेक्षाध्यान में बहुत सारे ऐसे प्रयोग हैं, जिन्हें नियमित किए जाने पर हमारी विवेक-शक्ति जागृत हो सकती है।' समणीजी ने चयनित प्रेक्षा-प्रयोग करवाए।

कार्यशाला में वरिष्ठ प्रेक्षा-प्रशिक्षक श्री शम्भुदयाल टाक ने प्रेक्षा-प्रयोगों की सैद्धान्तिक जानकारी के साथ विविध प्रयोग करवाए। श्री अशोककुमार जैन ने श्री जोशी और श्रीमती हंसाबेन का साहित्य भेंट कर सम्मान किया।

प्रेक्षाध्यान योग द्वारा स्मरण शक्ति का विकास किया जा सकता है

प्रेक्षा विश्व भारती, कोबा द्वारा स्थानीय सरस्वती माध्यमिक विद्यालय, सेक्टर ६, गांधीनगर में प्रेक्षाध्यान की कार्यशाला का आयोजन किया गया। कार्यशाला में विद्यालय के करीब ३०० छात्र-छात्राओं ने भाग लिया। स्मरण-शक्ति के विकास हेतु आयोजित की गई इस कार्यशाला में प्रेक्षा प्रशिक्षक शंभुदयाल टाक ने स्मरण-शक्ति के विकास के प्रयोग करवाए। सैद्धान्तिक प्रशिक्षण के दौरान श्री टाक ने बताया कि एकाग्रता का न होना सबसे बड़ी समस्या है। श्री टाक ने बताया कि पढ़ते समय दूसरी बातों का चिंतन हमारे दिमाग में चलता रहता है, जिसके कारण मूल बात दिमाग में पहुंच ही नहीं पाती। अतः हमें ध्यान और योग के द्वारा स्वयं को एकाग्रचित्त बनने का अभ्यास करना है। श्री टाक ने विविध प्रयोग करवाए।

कार्यशाला के आयोजन हेतु विद्यालय के प्रधानाचार्य श्री श्री सुरेश भाई पटेल ने प्रेक्षाध्यान ऐकेडमी का आभार ज्ञापित करते हुए कहा कि योग से विद्यार्थियों का मानसिक, शारीरिक एवं भावनात्मक विकास शीघ्रता से होता है। प्रेक्षाध्यान ऐकेडमी के अध्यक्ष श्री बाबुलाल सेखानी ने आगामी शिविरों की सूचना दी और विद्यार्थियों को भावी जीवन के प्रति शुभकामनाएं व्यक्त की।

'प्रेक्षाध्यान' के संबंध में घोषणा

फार्म - 4 (नियम 8 देखिए)

1.	प्रकाशन स्थान	:	लाडनूं
2.	प्रकाशन अवधि	:	मासिक
3.	मुद्रक का नाम	:	अरविन्द गांठी
	क्या भारतीय नागरिक है	:	हां
	यदि विदेश में तो मूल देश का नाम	:	नहीं
	पता	:	तुलसी अध्यात्म नीडम्, जैन विश्व भारती,लाडनूं, नागौर - 341306 (राजस्थान)
4.	प्रकाशक का नाम	:	अरविन्द गांठी
	क्या भारतीय नागरिक है	:	हां
	यदि विदेश में तो मूल देश का नाम	:	नहीं
	पता	:	तुलसी अध्यात्म नीडम्, जैन विश्व भारती, लाडनूं, नागौर - 341306 (राजस्थान)
5.	संपादक का नाम	:	अशोक संचेती
	क्या भारतीय नागरिक है	:	हां
	यदि विदेश में तो मूल देश का नाम	:	नहीं
	पता	:	तुलसी अध्यात्म नीडम्, जैन विश्व भारती, लाडनूं, नागौर - 341306 (राजस्थान)
6.	उन व्यक्तियों के नाम और पते, जो समाचारपत्र के स्वामी हों तथा समाचारपत्र के एक प्रतिशत से अधिक के शेयरदार या हिस्सेदार हों	:	जैन विश्व भारती, लाडनूं - 341306 (राजस्थान)

मैं, अरविन्द गांठी एतद्द्वारा घोषित करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

दिनांक 05.03.15

(अरविन्द गांठी)
प्रकाशक के हस्ताक्षर

किसी भी समस्या के बारे में
चिंता मत करो,
व्यथा मत करो,
शांत भाव से
समाधान का पथ खोजने का प्रयास करो।

– आचार्य महाश्रमण

श्रद्धाप्रणत

मुल्तानी देवी संचेती
मोमासर – दिल्ली

Date of Publication :5th of every month

डाक पंजीयन संख्या : नागौर/ 016/12—14

Date of Posting : 05/07-02-2015

भारत सरकार पंजीयन संख्या : 35209/80

If undelivered please return to : Jain Vishva Bharati, Ladnun - 341306, Dist. Nagaur (Raj.) Ph. : 01581-226080

Shed the 'I', Renounce the 'Mine', Everything will be your, Forever.

-Acharya Mahapragya

With best compliments from :

Ratanlal Basant Kumar Parakh (Churu) Kolkata

ORBIT GROUP

... BUILDING RELATIONSHIPS

The Orbit, 1 Garstin Place, Kolkata-700 001 Ph: 4011 9050 (20 lines)

Fax: 2210 1256 email: info@orbitgroup.net | www.orbitgroup.net

Orbit Residences. The key to high living.

प्रकाशक-मुद्रक : श्री अरविन्द गोठी द्वारा तुलसी अध्यात्म नीडम्, जैन विश्व भारती, लाडनूं के लिए प्रकाशित तथा जायन आई. एस. सी. कॉर्पोरेशन, नई दिल्ली में मुद्रित। संपादक - अशोक संचेती